योग

योग सिद्धान्तो
एवं
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

अनन्तश्री
...महाराज

3

...: 3

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283 202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

संपादक
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त संपादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध संपादक :
समस्त योग प्रचार
मण्डलों के अध्यक्ष
एवं
गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु.	09.00
वार्षिक शुल्क	रु.	90.00
द्विवार्षिक	रु.	170.00
आजीवन	रु.	800.00

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- सच्चा अहिंसक कौन ?
  (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 10
- रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी 13
- 'असतोमा सद्गमय' तमसो मा
  ज्योतिर्गमय 'मृत्योर्माऽमृतंगमय'
  द्वारका प्रसाद शर्मा 16
- अनकही स्मृतियाँ
  डॉ० विजय सिंह ....
- झिलमिलाता कोई पर्व सा
  'नन्दकिशोर 'श्याम' ....
- श्री वेदप्रकाश के परिवार ...
  केशवदेव उपाध्याय ....
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति (...
  कु० रुक्मिणी वर्मा 26
- भाव-प्रसून
  श्रीमती सरिता भारद्वाज 36
- आरोग्य-साधन
  डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र 37

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 36
अंक 3

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मूख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विपदान् योगशास्त्रोपदेशानृ,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जून
2003

बैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं
नमस्कृतं देवगणैः परं बरम्।
...लीलाभियुतं भजाम्यहं
गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्।।

(गर्ग सा ४/८)

अर्थात्

हे प्रभो ! आप बैकुण्ठपुरी में सदा लीला में तत्पर रहने वाले हैं। आपका स्वरूप परम मनोहर है। देवगण सदा आपको नमस्कार करते हैं। आप परमश्रेष्ठ हैं। गो–पालक की लीला में आपकी विशेष रुचि रहती है–ऐसे मैं आपका भजन करता हूँ। साथ ही आप गोलोकधिपति को मैं नमस्कार करता हूँ।

अमृतकण

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।

(गीता ८/१५)

श्री भगवान के शरणापन्न होने पर दुःखों के कारणभूत क्षणभंगुर पुनर्जन्म को अर्थात् संसार को महापुरुष प्राप्त नहीं होते। परम सिद्धि अर्थात भगवत्-लोक को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ से फिर संसार में आना ही नहीं होता।

❊ ❊ ❊

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः।।

ये रागादि चोर तब तक लूटते हैं और यह गृह तब तक कारागार रहता है। और कारागार में पड़े बंधुए के लिए यह मोह तभी तक बेड़ी का काम देता है जब तक कि यह मनुष्य आपका (भगवान का) नहीं हो जाता।

❊ ❊ ❊

योगयुक्त्या तु तद्भस्म दलाव्यमानं समन्ततः।
शाक्तेनामृतवर्षेण ह्यधिकारान्निवर्तते।।

(बृहज्जाबालः)

जो योगानुष्ठान के द्वारा शक्ति की अमृत वर्षा से उस भस्म को चारों ओर से प्लावित कर देता है वह प्रकृति के अधिकार से मुक्त हो जाता है।

❊ ❊ ❊

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः।।

(गीता ७/३)

प्रयत्नशील हजारों पुरुषों में से कोई एक पुरुष ही योग की सिद्धि (यथार्थ मार्ग) को प्राप्त किया करता है। और उस यथार्थगामी हजारों सिद्धों में से कोई एक ही मेरे तत्व को जान सकता है।

□ विशेष लेख

सच्चा अहिंसक कौन

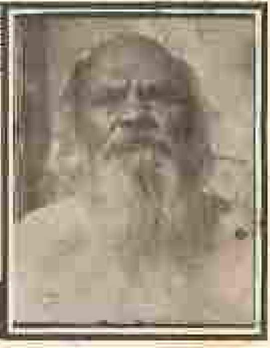

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

योग मार्ग की उपासना में और संसार की अन्य उपासनाओं में यही अन्तर है कि योग साधना में साधक साधना करता है किन्तु उसका लक्ष्य यही नहीं होता कि वह किसी देवी देवता की पूजा करके उनसे कोई वरदान लेना चाहता है। उसका लक्ष्य तो केवल मात्र इतना ही होता है कि वह अपने आपको उस तत्व में लय कर देना चाहता है जिसका वह ध्यान करता है। मैंने प्रातः काल गीता प्रवचन के समय भगवान के द्वारा अष्टधा प्रकृति का वर्णन किया था। भगवान् शब्दों में—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

ये आठ प्रकृति पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, मन बुद्धि और अहंकार है—ये अप प्रकृति हैं। इनमें पंचभूतों में सर्वप्रथम पृथ्वी तत्व है। पृथ्वी तत्व का साक्षात्कार करने वाला योगी न्ध तन्मात्रा की सीमा तक पहुँचता है। जल तत्व का साक्षात्कार करने वाला रस तन्मात्रा की सीमा तक पहुँचता है, अग्नि तत्व का साक्षात्कार करने वाला रूप तन्मात्र की सीमा तक पहुँचता है। उसके बाद वायु तत्व का साक्षात्कार करने वाला शब्द तन्मात्र की सीमा तक पहुँचता है और उसके बाद मन और बुद्धि तत्वों को पूर्णतया जानकर फिर आत्मतत्व का साक्षात्कार कर लेता है। भगवान ने गीता में इस प्रकार से अपनी अष्टधा अपरा प्रकृति का वर्णन किया है। ये सब साधन योग है। मनुष्य इन तत्वों का साक्षात्कार करने के लिये ध्यान योग का सहारा लेता है। इसके लिये उसे सर्वप्रथम धारणा का अभ्यास करना पड़ता है। धारणा, ध्यान के विषय में मैं तुम्हें अपने व्याख्यानों में बताता रहता हूँ। **'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'** अपने चित्त को एक लक्ष्य स्थान पर केन्द्रित करना धारणा कहलाता है। मैंने तुम्हें वैशेषिक दर्शन के अनुसार मन का लक्षण कई बार बतलाया है।

'युगपद्ज्ञानातुपत्तिर्मनसोलिङ्गम्' ए समय में जिसको अनेक ज्ञान नहीं होते हैं वह मन कहलाता है। मन ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा एक समय में एक विषय का ज्ञान प्राप्त करता है इसके बाद दूसरी ज्ञानेन्द्रिय उसे अपनी ओर आकर्षित करती है फिर उसे दूसरे विषय का ज्ञान होने लगता है। इस प्रकार से मनुष्य का मन रात–दिन भिन्न–भिन्न प्रकार के चिन्तनों के अन्दर लगा रहता है। इसलिए मनुष्य मन की ताकत को पा नहीं सकता। योगियों ने वह रास्ता ढूँढा है जिसमें मन की त त की पहचान होती है। मन बहुत शक्तिमान है। साधारण अवस्था में मन

चंचल रहा करता है। किन्तु जब वह एक स्थान पर एकाग्र हो जाये तो उसमें अद्भुत शक्ति आ जाती है। जिससे मनुष्य सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। भगवान पतंजली देव ने अष्टांग योग का वर्णन किया है। यम नियम से लेकर समाधि तक आठ अंग हैं। यम से लेकर प्रत्याहार तक पाँच बहरंग हैं। उनमें अन्तर्मुखी वृत्ति की आवश्यकता नहीं। मनुष्य बाहर से भी साधना करता हुआ लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है। यम-नियमों की साधना की आवश्यकता इसलिए पड़ती है, ताकि साधक अपने मन की वृत्तियों को पूर्ण पवित्र बना ले और मन में किसी प्रकार का विकार न रहे। यमों के अन्तर्गत पहला यम अहिंसा है, अहिंसा व्रत के पालन का परिणाम है–

'अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्संनिधौ वैरत्यागः' अर्थात् जो किसी को दुःख नहीं देना चाहता उसके सम्पर्क में आने वाले हिंसक प्राणी भी वैर भाव छोड़ देते हैं। हमारे प्राचीन हिन्दु जाति के अन्दर जो लोग धर्म प्रधान होते हैं, उनमें अहिंसा का माद्दा होता है। उनसे कह दिया जाये कि वे किसी को पीट दें, मार दें, तो वे ऐसा नहीं कर सकते।

किन्तु यह भी पूर्णरूप से अहिंसा नहीं है। जो लोग कमर्णा, मनसा, वाचा किसी की हिंसा नहीं करते, करना नहीं चाहते वे ही अन्ततः सच्चे अहिंसक बनते हैं। जैनियों का सिद्धान्त रहता है **'अहिंसा परमोधर्मः'** अहिंसा परम धर्म है। भगवान बुद्धदेव ने भी अहिंसा का बहुत बड़ा प्रचार किया। जैन मुनि अपने मुँह पर भी कपड़े की पट्टी बाँध लेते हैं। ताकि उनके श्वास–प्रश्वास से छोटे–छोटे कीटाणु भी न मरें। यह उनकी अहिंसा व्रत का परिचायक है। वैसे तो हजारों जीव हमारे हाथ पैर आदि हिलाने तथा मल–मूत्रादि त्यागने से मर जाया करते हैं। उनकी रक्षा की ही नहीं जा सकती, किसी उपाय से उनकी रक्षा नहीं हो पाती। जो लोग इस प्रकार से अहिंसा व्रत को धारण करने वाले हैं, विचार किया जाये कि क्या वे सच्चे अर्थों में अहिसक है ? किसी प्रकार से उनके मन में उद्वेग पैदा कर दिया जाये तो वे लोग मरने मारने को तैयार हो जाते हैं। इसलिए उन लोगों से भी पूर्णरूप से अहिंसा का पालन नहीं होता है। हर व्यक्ति से अहिंसा का पालन नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य द्वैत–दर्शन करता है तब तक वह अहिंसक नहीं बन सकता। **'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्नाः'** हरेक व्यक्ति के मन में न्यारी–न्यारी मतियाँ होती हैं, इसलिए एक दूसरे की बात उसे पसन्द नहीं आती। हमारा योगदर्शन यह बतलाता है कि मनुष्य अपने जीवन में दुःखों से छूट नहीं पाता वह उनसे छूटने का उपाय करता है किन्तु दुःख उसे लगे रहते हैं। योगदर्शन का सूत्र है–**परिणामताप संस्कार-'दुःखैः गुणवृत्ति विरोधाच्च सर्वमेव दुःखम् विवेकिनः'**। कुछ परिणामी दुःख है, कुछ तापज दुःख है तथा कुछ संस्कार दुःख होते हैं। उतावले में ऐसा कोई कामकर दिया जिसके लिए बार–बार पछताना पड़े। ऐसा परिणामी दुःख होता है। कुछ तापज दुःख होते हैं। ऐसा कोई कर्म कर बैठता है जिसके परिणाम में वह तपता रहता है। मन में कोई संस्कार बैठ जाता है वह मन से निकलता नहीं है। ऐसा संस्कारी दुःख होता है। किसी के मन में भय के संस्कार आ जाते हैं। या और किसी प्रकार के

भ्रम के संस्कार आ जाते हैं। इसके साथ–साथ एक और बहुत बड़ा दुःख है वह है गुणवृत्ति विरोध का। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता जिसका किसी से गुणवृत्ति विरोध न हो। किसी का स्वभाव कैसा है तो किसी का कैसा ? सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये त्रिगुणात्मक स्वभाव मनुष्य के होते हैं। परमात्मा की इतनी विचित्र शक्ति है– इन तीनों का ऐसा विचित्र बटवारा किया है कि किसी का भी स्वभाव संसार में एक दूसरे से नहीं मिलता। एक बात होती है, छोटी शक्ति बड़ी शक्ति के आधीन रहती है। पिता कहता है तू मेरा पुत्र है, तू मेरी आज्ञा का पालन कर। पुत्र अपना धर्म मानकर आज्ञा का पालन करता है किन्तु उसे पिता की सारी हरकतें पसन्द नहीं आती। गुरुदेव शिष्य को आज्ञा देते हैं, तुम ऐसा करो। शिष्य आज्ञा का पालन करते हैं किन्तु कोई–कोई शिष्य ऐसे भी होते हैं जो अपने मन में सोचते हैं कि गुरुदेव ने यह आज्ञा दी, ऐसी आज्ञा नहीं देनी चाहिए। पति और पत्नी में यद्यपि अभेद सम्बन्ध होता है किन्तु वृतियाँ पति पत्नी की भी अलग–अलग होती हैं। उनका भी स्वभाव नहीं मिलता। संसार में इतने मित्र हैं, प्रेमी हैं किन्तु स्वभाव किसी दूसरे से नहीं मिलता। किसी का आपस में सच्चा प्रेम नहीं होता। आपस में विकल्प रहा करता है। बड़े–बड़े विद्वानों का भी आपस में गुणवृत्तिविरोध रहा करता है। मनुष्य जीवन में गुणवृत्तिविरोध का दुःख बहुत बड़ा दुःख है। दुःख द्वैत में रहा करता है। जहाँ द्वैत भासता है वहीं विरोध रहता है। मैंने तुम्हें कई बार अपने व्याख्यानों में बतलाया है कि यम–नियम का पालन योगी के जीवन में अवश्य होना चाहिए। यदि कोई एक भी यम–नियम का पालन कर लेता है तो वह धीरे–धीरे मुक्ति के द्वार तक पहुँच जाया करता है। यदि योगी अहिंसा व्रत का ही पालन करना शुरू कर दे तो योग समाधि की ओर बढ़ जाता है।

किसी को मारना–पीटना ही हिंसा नहीं कहलाता। मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों प्रकार से हिंसा होती है। यदि कोई किसी को कड़वी वाणी बोलता है तो उससे दूसरे के मन में क्षोभ होता है। यह डण्डा मार देने से भी ज्यादा दुःख देता है। जिसके लिए कड़वी वाणी का प्रयोग होता है उसके मन में उद्वेग होता रहता है। उसके मन में प्रतिकार की भावना बनी रहती है वह सोचता रहता है कि इसने मुझे ऐसा कहा है, समय आने पर इसका अवश्य बदला लूँगा। इसलिए जो मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को भी दुःख देना नहीं चाहता वह सच्चा अहिंसक होता है किन्तु ऐसा अहिंसक योग–समाधि में पहुँचकर ही बन पाता है, अन्यथा सब हिंसक ही होते हैं।

दिल्ली में एक बार विश्वयोग सम्मेलन हुआ था उसमें हमें भी बुलाया गया था। उसमें जैन मुनि सुशील कुमारजी भी आये थे। वे जैन–मुनि कहलाते हैं। विचार उनके बहुत अच्छे हैं। उस सम्मेलन में एक सवाल उठा कि योग–यूनिवर्सिटी कहाँ कायम की जाये ? सम्मेलन के अध्यक्ष विदेशी थे उनका नाम क्रिस्टोफर हिल था। उनका मानना था कि योग यूनिवर्सिटी भारत से बाहर किसी अन्य देश में स्थापित की जाये। मुझे भी बोलने का अवसर मिला मैंने कहा–योग

भारत की प्राचीनतम विद्या है। मैं सत्य कहता हूँ जितने भी विदेशी यहाँ बैठे हुए हैं उनमें कोई भी योग की ठीक-ठीक परिभाषा बतला दे। मैंने कहा—योग यहाँ के ऋषियों की चीज है। इसलिए योग यूनिवर्सिटी भारत में ही होना चाहिए। यदि इसका थोड़ा बहुत प्रचार विदेशों में भी हुआ तो वह यहीं से गया है। हमारे शास्त्रों का लेख है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

भारतवर्ष के तपस्वियों से, ब्राह्मणों से ज्ञान-विज्ञान सारे विश्व में फैलता है। संसार के लोग यहाँ के विद्वानों से, योगियों से उस ज्ञान को प्राप्त करते हैं। उस सम्मेलन में एक और भी प्रस्ताव आया। वह किया था सुशील कुमार जैन ने। वे कहने लगे— इस विश्वविद्यालय का नाम योग यूनिवर्सिटी क्यों रखा जाये। इसका नाम अहिंसा-यूनिवर्सिटी होना चाहिए। निर्णय-समिति के हम सात सदस्य थे। कनखल वाले महामण्डलेश्वर स्वामी प्रकाशानन्द जी तथा अन्य कई प्रतिष्ठित योगी थे। जब प्रस्ताव आया कि इस विश्वविद्यालय का नाम योग विश्वविद्यालय ही क्यों हो ? इस पर कमेटी के सदस्य मेरी ओर देखने लगे कि मैं इसका जबाव दूँ। मैंने उत्तर दिया—इसका नाम अहिंसा यूनिवर्सिटी नहीं योग यूनिवर्सिटी ही होना चाहिए। अहिंसा योग का एक अंग है। योग अंगी है। अंगी के अन्दर अंग अपने आप आ जाता है। किसी को हम बुलाते हैं इधर आओ। तो उसके साथ में ही उसके हाथ भी आयेंगे, पैर भी आयेंगे, वे सब अपने आप उसके साथ आ जायेंगे। क्योंकि ये सब उसके अंग हैं। इसलिए इस यूनिवर्सिटी का नाम योग यूनिवर्सिटी होना चाहिए। अहिंसा यूनिवर्सिटी नहीं। अस्तु। मैं जो बात तुम्हें समझा रहा था वह यह था कि यदि मनुष्य अहिंसा का पूर्णव्रती बन जाता है—पूर्णरूपेण अहिंसक हो जाता है, तो उसके लिये हमारे योग शास्त्र में लेख है—**अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्संनिधौ वैरत्यागः।** अहिंसा में पूर्ण प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंसक जीव भी वैरभाव त्याग देते हैं। जिन साधकों के अन्दर महाभावों का उदय हो जाता है। उनमें तेज ही तेज रहा करता है। आनन्दानुगत समाधि के अन्दर महाभावों का उदय होता है। जिसका वे ध्यान करते हैं, वे सर्वत्र दिखाई दिया करते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

आनन्दानुगत में योगी सर्वत्र तेज ही तेज देखा करता है।

'सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि च आत्मानि'

प्राणीमात्र को जो अपने अन्दर देखता है और प्राणिमात्र में जो अपने को देखता है ऐसा योग युक्तात्मा योगी सम दर्शन वाला होता है। वहाँ पर होता है अद्वैत। योगी देखता है, इसमें भी मैं हूँ, सर्वत्र मैं ही मैं हूँ ऐसा देखा करता है। योगी ऐसा कथन मात्र या भावना मात्र से नहीं यथार्थ में देखता है। योग समाधि में ऐसी अनुभूति होती है। अस्मितानुगत समाधि में योग अपने हजारों चित्त बनाकर हजारों के पास एक साथ चले जाते हैं। वह बात और है किन्तु अपनी आत्मसत्ता के अन्दर सबको देखना और बात है। ऐसा योगी सर्वत्र समदर्शन वाला होता है।

वह सर्वत्र अपनी सत्ता को देख रहा है। फिर वह किस से विरोध करेगा—**'तत्र कः मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः'** एकत्व दर्शन करने वाले योगी को मोह (द्वेष) और शोक कहाँ ? वस्तुतः ऐसी स्थिति में पहुँचकर ही योगी सच्चा अहिंसक होता है या जहाँ पर महाभावों का उदय हो जाता है वहाँ पर भी वह पूर्ण अहिंसक बन जाता है। महाभावों का उदय कहाँ होता है ? देखो ! अभी मैं साधन योग की बात कर रहा हूँ सिद्धयोग की नहीं। आज के व्याख्यान का प्रकरण कुछ इस प्रकार का चल पड़ा है, मैं तुम्हें बताना यह चाह रहा हूँ कि योगी को पहले यम–नियमों की साधना कर लेनी चाहिए। क्योंकि ऐसा न करने पर योगी के रास्ते में अन्तराय आ जाया करते हैं। **'काम एष क्रोधः एष रजोगुणसमुद्भवः'** यम–नियम का पालन करने वाले के मार्ग में बाधायें नहीं आती। अहिंसा व्रत का मनसा, वाचा, कर्मणा का पालन करने वाले को कामनायें बाधा नहीं पहुँचा पाती। देखो ! तुम किसी को कटु वाणी बोलते हो। दूसरा व्यक्ति उसका उत्तर नहीं देता। वाणी से कुछ नहीं कहता क्योंकि तुम धनवान हो, बलवान हो, ताकत वाले हो किन्तु उसके मन में दुःख तो होता ही है। और यदि वह कमजोर मन वाला है तो कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा अन्यथा मन की ताकत वाला है तो बाहर से कुछ न कहने पर भी उसका मन अपना प्रभाव कर जायेगा। मैं तुम्हें अमृतसर में पढ़ने वाले दो विद्यार्थियों की घटना सुनाया करता हूँ। इनमें से एक श्री प्रभुजी का योग दीक्षित बच्चा था। दूसरे लड़के के द्वारा उसकी पुस्तकें चुराये जाने के कारण मन के क्षुब्ध होने से चुराने वाले लड़के की विक्षिप्तता के बारे में मैं तुम्हें बताया करता हूँ। उस लड़के के पागल हो जाने पर प्रभुजी ने कहा था—देखो ! यह हिंसा हो गई। योगी को इतना क्रोध नहीं करना चाहिये। यदि मन ताकत वाला है तो इस प्रकार से मनसहिंसा हो जाया करती है। इसलिये जो व्यक्ति ध्यानाभ्यासी है उसे दूसरे का अहित चिन्तन नहीं करना चाहिये। क्योंकि उसके चिन्तनमात्र से दूसरे का अनिष्ट हो जाया करता है। तुमने हरिहरानन्द जी की घटना कई बार मुझ से सुनी होगी। हरिहरानन्द श्रीप्रभु जी के बच्चे हैं जो आज भी शीशगिरी पहाड़ी पर समाधिस्थ हैं। तीन महीनें में समाधि से उठा करते हैं। हरिद्वार में एक बार कुम्भ के मौके पर सभी गुरु भाई बहिन हठ करने लगे कि हरिहरानन्द के दर्शन करा दें। श्री प्रभुजी **'अमानी मानदः मान्यः'** हैं वे अपने बच्चों को मान दिया करते हैं। प्रभुजी ने कहा—तुम ध्यान में बैठकर उनसे कह दो—श्री प्रभुजी का हुकुम है चले आओ। वे समाधि से उठकर चले आये। वे ध्यान के नशे में 'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन–रात जब योग आनन्दानुगत समाधि में होता है तो उसमें महाभावों का उदय हो जाया करता है। उसे कुछ भी सुध–बुध नहीं रहती।

हरिहरानन्द जी पहाड़ से उतरते हुये एक गाँव के पास किसी वृक्ष के नीचे बैठ गये। नवयुवक थे ही। जब योगी समाधि लगाता है तो उसके शरीर की वही अवस्था रहती है जो समाधि से पहले होती है। क्यों ? वह खानपान करता नहीं है, मल–मूत्र का त्याग नहीं करता, सोता नहीं है केवल खेचरादि की क्रियाओं से अमृतपान करते रहते हैं। हरिहरानन्द ध्यानावस्था

में ही वृक्ष के नीचे लेटे हुये थे। एक ठाकुर साहब आये। वह क्रोधी, अहंकारी स्वभाव का था। हरिहरानन्द से कहने लगा—अरे ! नग्न पड़ा है यहाँ पर ? उठ यहाँ से। जब उन्होंने बात नहीं सुनी तो उनके शरीर पर तीन—चार बेंत मार दिये। चोट लगते ही वे समाधि से उठे—उसे देखकर कहने लगे—अच्छा ! तू यही गिर जा, इसी समय। वह वहीं गिर गया और उसका शरीरान्त हो गया। श्री प्रभुजी हरिद्वार में भोजन कर रहे थे। वे कहने लगे—अरे, अरे देखो ! हरिहरानन्द ने यह क्या कर दिया। मैंने पहले ही कहा था कि वह यहाँ आने लायक नहीं है। अब उससे कह दो वहीं से वापिस चला जाये। हमारे कुछ गुरू भाई गये और वहाँ जाकर सारी हकीकत देखी। उन्हें श्रीप्रभुजी की वापिस जाने की आज्ञा सुनाकर वापिस भेज दिया। यह क्यों हुआ ? यह यूँ हुआ—सिद्धान्त है **'वृत्तिसारूप्यमितरत्र'** योगी जब समाधि से उठ जाता है तब वह अपनी मूल वृत्ति के अनुसार चेष्टा करता है। **'सदृशं चेष्टते स्वस्या प्रकृतेर्ज्ञानवानपि'** ज्ञानी लोग भी अपनी प्रकृति के अनुसार वर्तते हैं। श्री प्रभुजी कहा करते थे जो लोग गुरूदेव के थपेड़े खाकर यम—निमयों की साधना नहीं करते वे उल्टे—पुल्टे काम किया करते हैं। और अपने आप को पतन की ओर ले जाया करते हैं। वे किसी को शाप देंगे, मार देंगे। इससे उनका पुण्य क्षीण हो जायेगा। जो दण्ड देने लायक नहीं है उनको भी दण्ड देने पर तो पुण्य क्षीण होगा ही होगा। इसलिये योग—दर्शन में भगवान पतजंलि देव जी ने सर्वप्रथम यम—नियमों की साधना का उपदेश दिया है। उनमें यमों के अन्दर अहिंसा को सर्वप्रथम रखा। अहिंसा व्रत का पालन करने वाला मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को दुःख नहीं देता। तुमने गौरांग महाप्रभु की एक घटना सुनी होगी। गौरांग महाप्रभु नदी से स्नान करके आ रहे थे। रास्ते में एक मुसलमान ने उन पर थूक दिया। वह दोबारा स्नान करने चले गये। इस प्रकार वह मुसलमान उन पर कई बार थूकता रहा और वे नहाते रहे। सौ बार जब ऐसा हुआ तो उनकी अहिंसक व अक्रोध वृत्ति से प्रभावित होकर वह मुसलमान उनका अनन्य भक्त बन गया। मुझे श्री प्रभु से सम्बन्धित घटना याद आई। एक बार श्री प्रभुजी ऋषिकेश से आगे ब्रह्मपुरी के जंगलों में अपने शिष्यों के साथ घूमने गये। श्री प्रभुजी ने पहले कभी वहाँ निवास किया था। आजकल तो ब्रह्मपुरी में भी पक्के आश्रम आदि बन गये हैं। हमारे गुरू भाई श्री मुल्खराज जी भी श्री प्रभुजी के साथ थे। वे तुरीयस्थिति में रहा करते थे। महाभावों का उदय उनके अन्दर हो चुका था। उनकी स्थिति यह थी—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वच मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

वे हर जगह रोम—रोज में श्री प्रभुजी के दर्शन किया करते थे। स्वयं भी ध्यान करते—करते उनमें लय हो जाया करते। वे देखते थे कि उनकी चार भुजायें हो गई हैं। वहाँ जंगल में जाते हुये सामने से एक चीता निकल आया। हमारे गुरू भाई बहिन घबरा से गये और कहने लगे—'प्रभु जी ! चीता आ गया, चीता आ गया श्री प्रभुजी ने मुल्खराज जी से कहा— 'राजे ! देखो यह क्या आ रहा है' मुल्खराज जी झट से चीते के पास पहुँच गये और उस पर हाथ फेरने

लगे व प्यार करने लगे। फिर कहने लगे– प्रभुजी ! आपका बच्चा है, आपका बच्चा है। यूँही बार–बार कहते रहे। प्रभुजी कहने लगे– 'राजे ! इसे छोड़ दे। थोड़ी देर में चीता अपने आप दूर चला गया। इसे कहते हैं–**'अहिंसाप्रतिष्ठायाम् तत्संनिधौ वैरत्यागः।'** जिनकी अहिंसा व्रत पर पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है वे ही ऐसा कर सकते हैं। किन्तु यह स्थिति बिना योग समाधि के नहीं आया करती। तुमने भगवान शंकर के चित्र देखे ही हैं। उनके शरीर पर अनेक साँप लिपटे रहते हैं। यह उनकी अहिंसा वृत्ति के कारण है। ब्र० गोपालानन्द जी जब श्री प्रभुजी के पास आ गये तो पीछे से उनके पिता जी उन्हें लेने के लिये आ गये। उस समय ब्रह्मचारी जी का नाम राम गोपाल था। वह (पिता) प्रभुजी के पास आकर कहने लगे– 'महाराज ! हमारा एक ही लड़का है। आप इसे घर वापिस भेज दें।' श्री प्रभुजी कहने लगे तुम्हारा लड़का है, तुम उसे अपने साथ लिवा ले जाओ। उस समय ब्र० गोपालानन्दजी ध्यान में बैठे हुये थे। जब उनके पिताजी उस कमरे में पहुँचे तो देखा कि एक भयंकर काला सर्प उनके शरीर पर घूम रहा है। दो तीन बार पिता ने अपने लड़के के पास जाने की कोशिश की किन्तु सर्प फुँसकार मारता रहा। ब्र० जी के पिता गोविन्दशरण सोचने लगे। आश्चर्य की बात है यह भयंकर सर्प मेरें लड़के को कुछ नहीं कर रहा है और मुझे काटने को दौड़ता है। इस बात से प्रभावित होकर उन्होंने ब्र० जी को सदा के लिये श्री प्रभुजी के चरणों में रहने की अनुमति दे दी। यह सब अहिंसा वृत्ति का परिणाम था। इसलिये देखो ! अपने आप को योगी बनाने की चेष्टा करो। जब तक अन्तर्मुखी वृत्ति नहीं बनती तब तक **'अन्धेन नीयमानाः यथा अन्धाः'** वाली बात रहती है। बस ! इस समय अपनी वाणी को यही विराम देता हूँ। सभी को बार–बार आशीर्वाद।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।

हे अर्जुन ! मेरे अनन्यशरण होकर स्त्री, वैश्य और शूद्रगण तथा चाण्डालादि पापयोनिवाले भी निश्चय परमगति को प्राप्त होते हैं। फिर पुण्ययोनि ब्राह्मण तथा राजर्षि (मेरे शरणागत) भक्तों की तो बात ही क्या है। अतएव तुम इस सुखरहित और अनित्य मनुष्यजन्म को पाकर निरन्तर मेरा ही भजन करो।

एकं सद् विप्रा: बहुधा वदन्ति

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

वेदों का उद्‌घोष है कि परमतत्व एक ही है इसे ऋषिगण बहुत प्रकार से बतलाते हैं। **'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म'** ब्रह्म सत्य स्वरूप है। ज्ञान स्वरूप है तथा अनन्त है। अनेक ऋषियों ने उस परम तत्व की खोज की। उन्होंने तत्व साक्षात्कार किया किन्तु लक्ष्यप्राप्ति का मार्ग भिन्न–भिन्न रहा है। उस परम तत्व को भिन्न–भिन्न नामों से अभिहित किया है। वेदान्त व योग में उस परम तत्व को ब्रह्म नाम से कहा गया है और यह जीव भी तत्वतः ब्रह्म ही है। जो सर्वत्र व्याप्त है उसे ही ब्रह्म कहा गया है। उस ब्रह्म तत्व की प्राप्ति अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि से ही हो सकती है। सृष्टि के आदि ज्ञानोपदेष्टा को गुरू नाम से कहा गया है। **'सः पूर्वेषामपि गुरू कालेनानवच्छेदात्'** वह परम तत्व ही ब्रह्मादि का भी गुरू है अर्थात् ब्रह्मा आदि को भी जो ज्ञान देने वाला है और उनका पथ प्रदर्शक है वह गुरु तत्व है। गुरू देव की कृपा से योगीलोग उस परम सत्य को अपने हृदय गुहा में पाया करते हैं। इसलिये कहा जाता है–

ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्वस्तु
तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।

आत्मज्ञान इस शरीर के माध्यम से ही हो सकता है। भौतिक शरीर, प्राण मन और बुद्धि आदि सब साधन हैं। कुछ लोग 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के सिद्धान्त के आधार पर शरीर की भी उपेक्षा करते हैं किन्तु योगीगण मानते हैं कि ब्रह्म सत्य है साथ ही जगत भी सत्य है क्योंकि इस जगत (शरीर) के बिना आत्म ज्ञानरूपी सिद्धि को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस शरीर के साथ ही जगत का अस्तित्व है। शरीर के संघात के नष्ट हो जाने पर साधना नहीं बन सकती। इसलिये तत्व ज्ञान के लिये आवश्यकता है स्वस्थ शरीर की। शास्त्र कहते हैं **'शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्'** अर्थात् यह मानव शरीर धर्मलाभ का आद्य अथवा प्रथम साधन है। तात्पर्य यह कि शरीर ही योग साधना का उपादान कारण है। कार्य की सिद्धि में उपादान तथा निमित्त दो कारण माने गये हैं। जिस प्रकार से घट के निर्माण में दो कारण हैं इन में मिट्टी घट का उपादान कारण है। बिना मिट्टी के घट का निर्माण हो नहीं सकता। दूसरा कारण है कुम्भकार या कुम्हार जिसे निमित्त कारण कहा जाता है। दोनों ही कारण आवश्यक हैं घट के निर्माण में। तत्व ज्ञान में यह पिण्ड अथवा शरीर निमित्त तथा उपादान दोनों ही कारण एक साथ है ! चित्त शुद्धि के बिना अज्ञान का नाश नहीं होता है। चित्त शुद्धि का उपाय योग साधना है। योगियों के जीवन चरित्रों के अवलोकन से ज्ञात होता है तत्व ज्ञान के लिये उन्होंने

कितनी कठोर–कठोर साधनायें की हैं। जो योगी वनों की कन्दराओं में साधना करते हैं। इनके क्रिया कलाप को तो हर व्यक्ति नहीं जानता किन्तु जो मानव समाज में जुड़े रहकर साधना करते हैं उनकी साधना का अन्दाज तो उनकी साधना से लगाया ही जा सकता है। इन महापुरुषों ने दस–दस बारह–बारह वर्ष तक कठोर ऐकान्तिक साधना गुफाओं में रहकर की। तत्पश्चात् अपनी साधना से उपलब्ध ज्ञान का समाज में प्रसारण किया और योग जिज्ञासु समाज इन महापुरुषों से बहुत उपकृत हुआ है। इसलिये योग तत्व की उपलब्धि के लिये आवश्यक है साधक उसी संवेग से साधना करे और योग तत्व का साक्षात्कार करे। योग सिद्धान्तों को समझ लेना और बात है किन्तु उन सिद्धान्तों को जीवन में आत्मसात् करना अलग बात है। दीर्घकाल तक गुफाओं में साधना करके योगी लोग अपने प्राण–मन को दिव्य बना डालते हैं। सिद्धान्त समझकर उन पर व्याख्यान देना तो सरल है किन्तु योग की रीति पर चलकर साधना करना अत्यन्त कठिन बात है। योग साधना से ही तन मन दिव्य बनता है। भगवान् गीता में बतलाते हैं जब योगी इस प्रकार से साधना करके तन–मन को परम सतोगुणी बना लेता है, उस समय उस योगी के रोम–रोम से प्रकाश फैलता है।

आज समाज में जगह–जगह पर कुण्डलिनी योग, राजयोग, प्राणायाम सिखाये जाने वाले केन्द्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हठयोग के साधक तो आज विरले ही हैं। गुरुदेव भगवान् कहा करते थे 'मुझे आज के जमाने में हठयोग का कोई अधिकारी नहीं मिलता है इतना शरीर शोधन नहीं होता, संयम नहीं होता इसलिये हठयोग का आज अधिकारी नहीं है।' आज योग का प्रचार करने वाले स्वयं यम–नियमों का पालन नहीं करते। यम नियम के पालन से ही साधक कसौटी पर खरा उतरता है। अन्यथा आत्मिक उन्नति होने पर भी च्युति अवश्यम्भावी है। साधक की प्रशान्तवाहिता वृत्ति बनी रहनी चाहिये। गीता में भगवान् साधक के मन के समत्व की बात बार–बार करते हैं। योगी का जीवन सुलझा हुआ होता है। इसको न तो सिद्धान्तों पर संशय होता है और न ही किसी प्रकार के पूर्व आग्रह से वह ग्रसित होता है। प्रकृति में हर क्षण परिवर्तन हो रहा है। ऐसे में किसी व्यक्ति या वस्तु के सत्यासत्य का निर्णय नहीं दिया जा सकता है। समय के साथ–साथ परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। वृत्तियों का उत्थान व विकास ही योग साधना का लक्ष्य है। त्रिगुणात्मक संसार में श्रेष्ठ–अवर का भेद रहता ही है। किन्तु योगी गुणों के परिवर्तन को जानता है इसलिये किसी से द्वेष अथवा हेय बुद्धि नहीं रखता है। गुरुदेव भगवान के समक्ष एक दिन एक व्यक्ति ने किसी दूसरे व्यक्ति के चरित्र दोष की काफी शिकायत भरी बातें कही। गम्भीरतापूर्वक सारी बातें सुन लेने के पश्चात् गुरुदेव ने कहा–पूर्ण विकार रहित स्थिति तो यहाँ किसी की भी नहीं है तो फिर दूसरे के दोषों का ही प्रकाशन क्यों किया जाये ? शिकायतकर्ता की समझ में बात आई कि शायद अन्तर्यामी गुरुदेव सब के मनों की जानते हैं तथा हम उनके सामने अपने को श्रेष्ठ साबित करने का वृथा दम्भ भरते हैं।

इसलिये गुरुदेव ने हमेशा अपने बच्चों को सावधानी पूर्वक जीवन जीने का उपदेश दिया है। जिससे हमारा कोई ऐसा क्लिष्ट संस्कार न बन जाये वो हमारी साधना में बाधक बन जाये। अच्छे बुरे अथवा अक्लिष्ट और क्लिष्ट संस्कारों का द्वन्द्व ही हर व्यक्ति के जीवन में चल रहा है। योग साधक का प्रयास हर समय यही होना चाहिये कि हमारा संस्कार बिगड़ न पाये। तभी हम दूसरे के दोषों को कह सकते हैं। उन्हें दूर करने में सहायक हो सकते हैं अपने गुरुदेव ने अपने हर बच्चे को उत्थान की ओर बढ़ते रहने का उपदेश तथा मार्ग दिया है। आवश्यकता इस बात की है हम गुरु वचनों को हृदय में धारण कर स्वयं सम्भल जायें और फिर दूसरों को संभालें। गुरुदेव के चिन्तन से ही शिष्यों का जीवन दिव्य बनता है। इसलिये तत्व ज्ञान के लिये उनके चिन्तन से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ उपाय नहीं है। गुरुदेव ने शिष्य को जो मार्ग दिया है उस पर चलने से ही साधक को लाभ मिल सकता है जगह–जगह भटकने से आत्मविकास नहीं हुआ करता है।

* * *

त्रयोरादौ समीरस्य जयं कुर्यान्नरः सदा।
मिताहारश्चासनं च शक्तिचालस्तृतीयकः।।

'चित्त के दो हेतु हैं, वासना और प्राण। इनमें से किसी एक के नष्ट होने से दोनों का नाश होता है। इनमें से पहले सदा प्राण को ही जय करना चाहिये, तब मिताहार होकर आसन साधे और फिर शक्ति चालन करे।'

रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी

एकाग्रता तथा ध्यान

ध्यान और चिन्तन–मनन का सतत अभ्यास करना चाहिए।

सन्ध्या हो जाने पर सब काम छोड़कर ईश्वरचिन्तन करना चाहिए। अँधेरा छा जाने पर मन में अपने आप ईश्वर का विचार उठता है। 'अभी–अभी सब कुछ दिखाई दे रहा था, पर अब तो सब अंधेरे में ओझल हो गया। ऐसा किसने किया ?' इस तरह के विचार आते हैं इसीलिए सन्ध्या के समय सब काम छोड़कर उन्हें पुकारना चाहिए। देखा नहीं, मुसलमान लोग कैसे सब काम छोड़कर ठीक समय पर नमाज पढ़ते हैं।

अगर सरसों की पुड़िया में से एक बार सरसों के दाने बिखर गए तो फिर उन्हें चुनकर इकट्ठा करना जिस प्रकार दूभर हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का मन यदि एक बार संसार के विषयों में बिखर जाए तो फिर उसे समेटकर एकाग्र करना दूभर हो जाता है।

ध्यान मन में, वन में या कोने में करना चाहिए।

प्रथम अवस्था में निर्जन स्थान में जाकर एकाग्र चित्त से ईश्वरचिन्तन करना चाहिए, नहीं तो मन में नाना विक्षेप आते हैं। दूध और पानी को यदि एकत्र कर दो तो दूध पानी में मिल जाएगा; परन्तु यदि उसी दूध का निर्जन में मक्खन बना लो तो वह पानी में उतराता रहेगा—मिलेगा नहीं। इसी तरह साधना–अभ्यास के द्वारा चित्त की एकाग्रता प्राप्त कर लेने पर मनुष्य चाहे जिस परिस्थिति में रहे, उसका मन उससे ऊपर उठकर ईश्वर में ही लीन रहता है।

श्रीरामकृष्ण कभी–कभी अपने शिष्यों से कहा करते—"ध्यान आरम्भ करने के पहले एक बार (अपनी ओर दिखाते हुए) इसका चिन्तन कर लिया करता। यह क्यों कहता हूँ जानते हो ?—इस पर तुम लोगों का विश्वास है, इसलिए इसके बारे में सोचते ही भगवान् की याद आ जाएगी। जैसे, गौओं के झुण्ड को देखते ही चरवाहे की बात याद आती है, वकील को देखते ही अदालत कचहरी की बात याद आती है, बेटे को देखते ही उसके बाप की याद आती है, वैसे ही मन नाना विषयों में बिखरा रहता है, इसके बारे में सोचते ही पूरा मन एक जगह सिमट आएगा, और उस एकाग्र मन को ईश्वरचिन्तन में लगाने पर ठीक–ठीक ध्यान हो सकेगा।"

मन को एकाग्र करने का सब से सरल उपाय है उसे दीप की शिखा पर स्थिर करना। शिखा के सब से भीतर का नीला भाग मानो कारणशरीर है। उस पर मन को स्थिर करने से मन शीघ्र ही एकाग्र हो जाता है। इस नीली ज्योति के बाहर का भाग मानो सूक्ष्मशरीर है और उसके भी बाहर का भाग स्थूलशरीर।

अपनी साधनावस्था का उल्लेख करते हुए श्री रामकृष्ण भक्तों से कहा करते—"उस समय

इष्टचिन्तन और ध्यान करने के पहले ऐसा सोचा करता था मानो मन को अच्छी तरह से धो ले रहा हूँ; मन के भीतर (कुचिन्ता, वासना आदि) जो कुछ मैल या गन्दगी है वह सब अच्छी तरह धोकर मन को स्वच्छ कर लेने के बाद उसमें इष्टदेव को लाकर बिठा रहा हूँ। ऐसा किया करो।"

ध्यान करते समय ऐसा चिन्तन किया करो कि मानो तुम अपने मन को रेशम की रस्सी से इष्टदेवता के चरणकमलों के साथ बाँधकर रख रहे हो, ताकि वे वहाँ से और कहीं न जा पाएँ। रेशम की रस्सी किसलिए कह रहा हूँ ? वे चरणकमल अत्यन्त कोमल हैं, दूसरी रस्सी से बाँधने पर उन्हें कष्ट होगा, इसलिए।

ध्यान करते समय बीच–बीच में साधक को एक प्रकार की नींद–सी आया करती है, उसे योगनिद्रा कहते हैं। इस अवस्था में कई साधकों को ईश्वरीय रूपों के दर्शन होते हैं।

सात्विक मनुष्य किस प्रकार ध्यान करता है जानते हो ? वह गहरी रात के समय मसहरी के भीतर बिछौने पर बैठकर ध्यान किया करता है, ताकि कोई जान न पाए।

ईश्वर में बिलकुल डाइल्यूट (एकरूप) हो जाओ—जैसे धातु तेजाब में गलकर एक हो जाती है।

मन के स्थिर होने पर श्वास स्थिर होता है—कुम्भक हो जाता है। यह कुम्भक भक्तियोग के द्वारा भी होता है, तीव्र भक्ति से भी श्वास स्थिर हो जाता है।

गहरे ध्यान में ध्येय वस्तु का यथार्थ स्वरूप प्रकट होकर ध्याता के अन्तःकरण को प्रकाशित कर देता है।

एक दिन एक मैदान पर से चलते हुए अवधूत ने देखा कि सामने से ढोल–नगाड़े ... बड़ी धूम–धाम के साथ एक बरात आ रही है। पास ही में एक बहेलिया ... कर एक चिड़िया पर निशाना साध रहा है। वह अपने लक्ष्य में इतना तल्लीन था कि इतने नजदीक से इतनी धूमधाम के साथ आने वाली बरात की ओर उसने एक बार भी नजर उठाकर नहीं देखा। अवधूत ने उस बहेलिए को नमस्कार करते हुए कहा, "महाराज ! आप मेरे गुरु हैं। जब मैं ध्यान करने बैठूँ तब मेरा मन भी इसी तरह ध्येय वस्तु पर एकाग्र रहे।"

एक आदमी मछली पकड़ रहा था। अवधूत ने उसके निकट जाकर पूछा, "भाई, अमुक जगह जाने का रास्ता कौन सा है ?" उस समय उसकी बंसी हिलने लगी थी—मछली काँटे में लगे चारे को खाने लगी थी। वह आदमी बंसी की ओर एकटक देखते हुए निःस्तब्ध बैठा रहा। जब मछली काँटे में फँस गई तो उसे निकालकर वह अवधूत की ओर मुड़कर बोला, "आप क्या कह रहे थे ?" अवधूत ने उसे प्रणाम करते हुए कहा, "आप मेरे गुरु हैं। जब मैं परमात्मा के ध्यान में बैठूँ तब मैं इसी तरह, कार्य सिद्ध हुए बिना दूसरी ओर ध्यान न दूँ।"

किसी तालाब के किनारे एक बगुला एक मछली को पकड़ने के लिए बड़ी सावधानी से

धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा था, और पीछे से एक बहेलिया उस बगुले पर निशाना लगा रहा था, पर बगुले का उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं था। अवधूत ने उस बगुले को नमस्कार करते हुए कहा, "जब मैं ध्यान में बैठूँ तब मैं भी इसी प्रकार पीछे मुड़कर न देखूँ।"

कहावत है कि जो ध्यानसिद्ध है उसके लिए मुक्ति निश्चित है। ध्यानसिद्ध किसे कहते हैं जानते हो ? जो ध्यान में बैठते ही भगवद्भाव में विभोर हो जाता है।

गहरे ध्यान में मनुष्य बाह्यज्ञानरहित हो जाता है। ध्यान में इतनी एकाग्रता आ जाती है कि दूसरा कुछ भी दिखाई–सुनाई नहीं देता, यहाँ तक कि स्पर्श का भी बोध नहीं रहता। इस समय यदि देह पर से साँप भी चला जाए तो न तो जो ध्यान कर रहा है उसे पता चलता है और न उस साँप को ही।

जो ध्यान करते हुए इतना मग्न हो जाता है कि सिर पर चिड़ियों के बैठने पर भी समझ नहीं पाता, वही ठीक–ठीक ध्यान करता है।

ध्यान गहरा होने पर इन्द्रियों के सभी कार्य बन्द हो जाते हैं। मन की बहिर्मुखवृत्ति एकदम रुक जाती है, मानो घर का बाहरी दरवाजा बन्द हो गया हो। इन्द्रियों के पाँचों विषय–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध–बाहर पड़े रह जाते हैं। पहले पहल ध्यान के समय इन्द्रियों के सब विषय सामने आते हैं, परन्तु ध्यान के गम्भीर होने पर वे फिर नहीं आते–बाहर पड़े रहते हैं।

तुम चाहे जिस मार्ग से जाओ, मन के स्थिर हुए बिना योग नहीं होता। मन योगी के वश में होता है, योगी कभी मन के वश में नहीं होता।

* * *

न प्रमादोऽत्र कर्तव्यो विदुषा मोक्षमिच्छता।
प्रमादे जृम्भते माया सूर्यापाये तमो यथा।।६०२।।
स्वानुभूतिं परित्यज्य न तिष्ठन्ति क्षणं बुधाः।
स्वानुभूतौ प्रमादो यः स मृत्युर्न यमः सताम्।।६०३।।

भावार्थ–मोक्ष की इच्छा करने वाला विद्वान् इस अभ्यास में कदापि प्रमाद (गलती, गफलत, आलस्य) न होने दे। कारण, सूर्यास्त काल में जैसे अन्धकार, वैसे ही प्रमाद में माया का उद्भव होता है। तत्वज्ञानी पुरुष स्वानुभूति छोड़कर एक क्षण भी नहीं रहते; कारण, वे यह जानते हैं कि स्वानुभूति में प्रमाद का होना ही ज्ञानियों की मृत्यु है, यम मृत्यु नहीं।

'असतोमा सद्गमय' तमसो मा ज्योतिर्गमय 'मृत्योर्माऽमृतंगमय'

द्वारका प्रसाद शर्मा (लखनऊ)

(१) प्रभासते नित्यमहो प्रभाकरः,
प्रभा विकीर्यानयते प्रभातम्।
ध्वान्तं विदीर्य श्रुतिवाक् भणतीति भानुः,
तमसस्तु ज्योतिर्गमयेति मां प्रभुः।।

(२) सत्यस्वरूपः प्रभुरेव केवलम्,
समस्तमन्यदसदेव नूनम्।
श्रुतिर्भूय एवं प्रतिपाद्य वलि,
असतस्तु मां गमय सत्प्रति नित्यमेव।।

(३) मृत्युर्नमरणं वपुषस्तु केवलम्,
मृतिस्तदेवास्ति यदा स्वविस्मृतिः।
प्रभोरनन्तस्य महामहिम्नः,
मृत्योर्गमय माऽमृतमुक्तिरिति श्रुतेः।।

(४) जनुर्मनुष्यस्य महोपलब्धिः
तावद्धि यावत् यतमान एव।
आत्मस्वरूपं परिचिन्त्यमानः,
ऐकात्म्यभावं परिदृश्यमाणः।।

(५) वयं पुण्यभाजस्तथा भूरिभागाः,
मनुवर्णमाप्ताः सुकुलोद्भवाश्च।
ततः सद्गुरुणां चरणाश्रिता वयं,
अतः परं शेषमलभ्यमस्ति किम्।।

(६) एतत्समस्तं समवाप्य हे सखे,
मनश्चेन्न लग्नं प्रभुपादपद्मयोः।
अन्तः स्पृहा नोत्थरिता स्व-बोधे,
श्वसन्तोऽपि सन्तो धराभारयन्तः।।

(७) अतो निश्चयेनाद्य छद्मेन मनसा,
महत्प्रयत्नं भवतां विधेयम्।
साध्यं भवेत्सर्वदा त्वत्समक्षं,
असाध्यमस्तीह ततः परं किम्।।

अनकही स्मृतियाँ

डा० विजय सिंह

सन १६६५ में श्री सद्गुरु भगवान के दर्शन से जीवन की गति चाहे–अनचाहे आज तक बदलती जा रही है। सन १६६० जून–मास की तारीख २५, भूचाल सा सब एक–बारगी तहस–नहस, झंझावात सा प्रतीत हुआ। परन्तु, लगभग बारह वर्ष से अधिक समय व्यतीत होने पर अब मन आश्वस्त हो चला है कि श्री सद्गुरु भगवान का यह कथन–"सद्गुरू तत्व कालातीत है" हाड़–मास के रूपाकार आकृति की ओर हाथ से इशारा करके श्री प्रभुजी का यह कथन कि, शरीर सद्गुरु तत्व नहीं है। उस तत्व का अवतरण का माध्यम शरीर होता है।

पूर्वेसषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

अपने परम प्रभु श्री रामलाल जी के तिरोधान का पूर्व बोध होते ही जब श्री गुरुदेव भगवान अमृतसर में श्री महाप्रभु जी से अपने मन की आशंका जताते हैं, तो महाप्रभु जी ने जो कहा– "राजे ! ऐसा शरीर तो मैं नित्य सैकड़ो धारण करता और छोड़ता रहता हूँ"। तू क्यों शोक करता है। यह वचन मानो आज प्रमाण रूप हम सभी के अन्तः प्रेरणा और साधना का सम्बल सिद्ध हो रहा है।

जो भी अपनी साधना को निष्ठापूर्वक थोड़ा बहुत निर्वाह कर रहे हैं, उन्हें अपने सद्गुरु की कृपा का प्रत्यक्ष–प्रवाह सतत् मिल रहा है।

सद्गुरू सहज करुणा मूर्तिरूप–

सहज तुर्यातीत, सदाशिवरूप श्री सद्गुरू भगवान शरणागत त्राता, शक्ति संचार से पामर को भी पावनकर्ता, अभ्यन्तर को उद्‌भासित करने वाले कितने अमानी, सदैव सबको स्नेह–मान प्रदाता, सहज मानवीय गुणों के भण्डार अपने प्रवचनों में साधक शिष्यों को सचेतते हुये कहते–कम से कम इतना समापन करलो की आगे मानव जन्म अच्छे में प्राप्त हो, जहाँ तुम्हें फिर साधना का सुयोग प्राप्त हो सके। नब्बे के दशक में आगाह करते हुये कहते–कठिन समय आगे आने वाला है। गुरुमंत्र का खूब जप किया करो। उन कृपाधन श्री प्रभुजी को अपने मन में निष्ठापूर्वक धारण कर लो। आगे गुरुदेव तो मिलेंगे परन्तु श्री प्रभुजी की तरह सहज सद्गुरुदेव मिलें इसका प्रयास करो। गुरुदेव कड़े प्रकृति के भी होते हैं। कड़ी परीक्षा लेकर ही शक्ति–संचार करने वाले होते हैं। इस संदर्भ में एक परमहंस आश्रम में कुछ दिन निवास किये हमारे गुरुभाई बताते थे कि, वहाँ के अधिष्ठाता गुरुदेव अपने शिष्यों को नियम से अनुष्ठान कराते थे और बबूल के छड़ियों से, शिथिलता बरतने वाले शिष्यों की कठिन प्रताड़ना करते थे। अतः बस कम ही शिष्य टिक पाते थे। अनुभूतियाँ, वहाँ मंत्र–साधना के बाद ही कराया जाता था। इस संदर्भ में, जब अपने परम कारुणिक गुरुदेव की उठी अभय मुद्रा का स्मरण होता है तो मन निर्भयता को प्राप्त हो जाता है। विकट से विकट संकट में उनके अभय दायी कर का स्मरण सहज ही सेतु का कार्य करता है।

सद्गुरु सबके अपने हैं–

योग प्रचार का कार्यक्रम था। प्रातः पाँच बजे स्नान करके श्री सद्गुरू भगवान के दर्शनार्थ प्रभुजी के प्रवास कक्ष की ओर गया। वह कारुणिक स्वरूप आज भी आँखों में तिर उठता है। ऊपर नग्न बदन, धोती घुटनों के ऊपर काछे हुये पूजा कक्ष में श्री प्रभुजी एक हाथ में बाल्टी का जल और दूसरे हाथ में झाड़ू लिये कमरा स्वच्छ कर रहे हैं। प्रणाम करना भूल ज्योंही श्री चरणों से प्रार्थना झाड़ू देने के लिये कहा तो–श्रीप्रभुजी बोले लल्ला ! तुम स्नान कर चुके हो। पूजा कक्ष में कहीं से एक मोटी बिल्ली ने एक तगड़े चूहे का आखेट किया था, उसका खून इधर–उधर पड़ा था। सो उसकी सफाई कर रहा हूँ। तमाम ब्रह्मचारी, प्रचार स्थल के शिष्यों को कुछ इसकी भनक ही न थी। ऐसा सहज, अमानी प्रकृति हमने श्री गुरुदेव जी का देखा। जिनके दृष्टि निक्षेप से महाशक्ति सामान्य जीवों में जगकर उसे असीम शक्ति–सम्पन्न बना देता है, वे कृपासागर अपने मुदित, निश्छल अहेतुक स्नेह का कृपादान आज भी कर रहे हैं।

सहज सीख

लौकिक जीवन हो चाहे आध्यात्मिक दोनों को व्यवस्थित रखने की कला श्री सद्गुरू भगवान सिखाते रहें। एक नवागन्तुक श्री प्रभुजी के चरणों में योग–जिज्ञासा के प्रश्न करता है। श्री प्रभुजी एक रोचक दृष्टि उस पर डालकर पूछते है–लल्ला ! क्या काम करते हो। आगन्तुक उत्तर रूखे ढंग से देता है–वकालत करता हूँ। वकील हूँ। श्री गुरुदेव जी बोले–पूरे मनोयोग से अपना काम किया करो। इतनी तल्लीनता से, व्यस्तता से करो कि रात्रि में चैन से सो सको। वह अपने अध्यात्म प्रश्न को भूलकर अब आर्थिक और निद्रा सम्बन्धी व्यवधान के समाधान की बात हेतु प्रार्थना करने लगा। श्री प्रभुजी ने उसे उपदेश दिया–अपने कर्म में निष्ठापूर्वक श्रम करो तथा व्यायाम और नेति धुम्रपान करना सीख लो। इससे तुम्हें समाधान प्राप्त होगा। पात्रता, संस्कार और तात्कालिक मनोभावों को सर्वद्रष्टा प्रभु देखकर अपनी कृपाकोर से सहायता प्रदान करते रहे।

बगुला ध्यान से बचो

नदी, नालों में एक पैर से तल्लीन बगुला पूर्ण मनोयोग से खड़ा रहता हुआ, आहार रूप मछली, केकड़े के चिंतन में रत रहता है। उसकी एकाग्रता स्थिरता का परिणाम में, उसे मात्र आहार ही प्राप्त होता है। श्री प्रभु जी जन साधारण को मन की एकाग्रता प्राप्त करने के लिये प्राथमिक रूप से खूब मंत्र जाप और ध्यान करने के प्रति उत्साहित करते थे। कहते रहे ऐसा करने से लौक सिद्धि एवं आत्मनिष्ठा दोनों प्राप्त होगा। परन्तु जिसमें मानसिक शक्ति अधिक जाग्रत हुई उसे सावधान भी करते थे। लघु सिद्धियों के प्रलोभन में मत पड़ो। ये आत्म साधना में विघ्न रूप है।

एक बार विनोद भाव से ऋषिकेश में एक रोचक प्रकरण श्री प्रभुजी ने सुनाया। बोले–लल्ला, चटपट सिद्ध होने का तरीका एक हमारे बच्चे ने हमें बताया था। किसी प्रचार कार्यक्रम में हमारे

निवास कक्ष में एक लम्बी दाढ़ी, जटायुक्त, त्रिपुण्डधारी महात्मा आते हुये दिखे। कक्ष में आकर साष्टांग प्रणाम किया। मैं लल्ला। उसको आदर देने के लिये कुर्सी मँगाने को कहने वाला था। परन्तु उसे प्रणाम करता देख, मैंने उससे परिचय पूछा। उसने कहा–प्रभो ! मैं आपका अमुक बच्चा हूँ। आपने दीक्षा अमुक शहर में प्रदान की थी मैंने पूछा–लल्ला। हाँ मुझे स्मरण हो आया। तुम अमुक हो। तुम्हारी ध्यानानुभूति अब कैसी है। उसने अपनी गाथा विस्तार से बतायी। कहा–प्रभो ! आपकी कृपा से अर्न्तजगत में गहरा प्रवेश मिला। अभ्यास पूर्वक आठ घण्टे तक समाधिस्थ होने लगा। इसी काल में सम्पर्क के कुछ व्यक्ति मेरे ध्यान प्रभाव को देख सेवा करने लगे। कुछ चेले भी बना लिये। वे सेवा भाव से हमारे आर्थिक भार को उठाते थे। आपके कृपा से कुछ बातें लोगों के पूछने पर सच हो जाती थीं। परन्तु सब समय यह नहीं हो पाता था। धीरे–धीरे चित्त ज्यों–ज्यों इन मान–सम्मान में घिरता गया। आन्तरिक ज्योति मध्यम दाग–छाया युक्त होता गया। चूँकि आसन हठपूर्वक सिद्ध हो गया था। अतः अब भी चार पाँच घण्टे बैठता हूँ परन्तु अन्तर जगत पहले की तरह अब प्रकाशित नहीं है। न अब आपके, न देवी देवताओं के चित्तहारी दर्शन ही होते हैं। मान–सम्मान बनाये रखने के लिये तथा जीविका निर्वाह हेतु अब स्वांग रचता हूँ। प्रभो ! आप अर्न्तयामी हैं। आपके सामने सब सत्य–सत्य कहता हूँ। पाँच हमारे अन्तरंग शिष्य हैं उनको संकेत बता दिया हूँ। मैं किसी गाँव–कस्बा के बाहर मन्दिर–सघन वृक्ष के नीचे आसनस्थ होकर बैठता हूँ। शिष्य लोग पहले से प्रचार भूमिका तैयार किये रहते हैं। कोई विवाह के लिये आता है तो उसमें मन्तव्य को जानकर हमारा शिष्य उससे कहता है। सिद्धजी के सामने जाकर मन ही मन प्रार्थना करो वहाँ बोलना नहीं। वे गहरे समाधि में हैं। वे सर्वज्ञ हैं। वे तुम्हारी मदद करेंगे। ऐसा कहकर उसे हमारे पास लेकर वह आता है। तथा दायीं ओर मेरे खड़े होकर पैर से बताये संकेत के अनुसार एक–दो–चार खड़ाऊ खटखटाता है। मैं समझ जाता हूँ कि सामने वाला विवाह, नौकरी, मुकदमा किस कार्य से आया है। विलम्ब करके आँख बन्द किये–किये उस आगन्तुक के मन्तव्य को प्रकट कर उसे कार्य सिद्धि का आशीर्वाद देता हूँ। इसी छल–छद्म से ठाठ–बाट जुटाया हूँ। परन्तु मन में इधर कुछ दिनों से ग्लानि होने लगी है। अतः आपके भूले श्री चरणों को पता लगाकर अपने कुकृत्यों को लिये प्रायश्चित करना चाहता हूँ। यह कथा वात्सल्य–विनोद भरे शब्दों में सुनाकर श्रीप्रभुजी मौन हुये। अन्य कार्य करने को उद्यत हुये।

यह कथा कहने का प्रयोजन क्या था ? कभी–कभी स्वगत मैं सोचता रहा हूँ। समाधान भिन्न–भिन्न पाठकों साधकों के अन्तःकरण के अनुरूप होगा। मेरी समझ में श्री प्रभुजी द्वारा कथित सम्प्रज्ञात की अपर भूमिका में मिल सिद्धियाँ और मनस–तत्त्व के परिमार्जन ठीक–ठीक न होने तथा श्री गुरुचरण विमुखता के साथ वैराग्य का न होना ही साधना की उच्च भूमिकत्व प्राप्त होने पर फिर पतन का कारण बनता है।

अस्तु। हमें प्रयास पूर्वक मंत्र–जप करते हुये उन अभय प्रदाता चरण कमलों को मन में धारण करते रहना चाहिए।

झिलमिलाता कोई पर्व सा पन्थ पर..........

सिद्धों के महासिद्ध करुणा-वरुणालय अपने दादागुरू परमप्रभु श्रीरामलालजी महाराज के प्रति

नन्दकिशोर 'श्याम'
(वाराणसी)

झिलमिलाता कोई पर्व सा पन्थ पर,
ज्वार-भाटे सा मन में रहा चढ़ उतर।।
एक जलती हुयी है बुझी सी शिखा,
एक सपना सुघर जो रहा अनदिखा।
नग्न ठूंठों में बिखरी पड़ी वाटिका,
भाग्य में जिसके पतझर ही है लिखा।
नीड़ अपना निशा का गहन क्रोड़ है,
प्रात स्वर्णिम नहीं मुस्कराता इधर।।
बज रही धड़कनें टूट जाता है क्षण,
कोई लाता संदेशा न उनका पवन।
भोगता रह गया एक क्षण के लिये,
शूल कांटों भरी जिन्दगी की चुभन।
वास करते जहाँ तुम मेरे देवता,
क्यों बनाते उसे यातनाओं का घर।।
जूझती लड़खड़ाती भंवर में तरी,
खो न जाये कहीं दाँव यह आखिरी।
तुम न आये मगर अग्नि की शाख पर,
जन्म लेती गई साधकी मंजरी।
एक शिलिका सजाती है गोधूलि का,
लूट लेता है कोई अंधेरा नगर।।
डोलता काँध पर लाश अपनी लिये,
प्राण जलते रहे कब्र के वन दिये।
हर महक को कफन सांझ बनती गई,
मौत को यों हजारों बरस हम जिये।
रेत टीलों से कहते रहेंगे कथा ?
ये व्यथा के उमड़ते हुये वीरधर।।

श्री वेदप्रकाश के परिवार को अभयदान

प्रेषक—केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

सन् उन्नीस सौ इकहत्तर में दिल्ली प्रान्त में श्री वेदप्रकाश मकोल जी, जो हमारे गुरूभाई हैं, पूरे परिवार के साथ निवास कर रहे थे। उनके परिवार में उनकी धर्मपत्नी, दो लड़के एवं तीन लड़कियाँ थी। बहुत ही स्वस्थ, भरापूरा एवं आनन्ददायक परिवारी वातावरण था। उस समय आदरणीय श्री वेदप्रकाश मकोल जी की अवस्था करीब पचास–बावन वर्ष की थी एवं यह प्रसंग करीब तीस बत्तीस वर्ष पूर्व का है अतः यह कह नहीं सकता कि उनका नश्वर शरीर इस संसार में अब है या नहीं, परन्तु उनके परिवारजन अवश्य ही होंगे, ऐसी आशा है।

श्री मकोलजी सरकारी महकमें में केन्द्रीय सरकार के इक्साइज विभाग में इक्साइज कलेक्टर के पद पर कार्यरत थे। निहायत शरीफ एवं बिल्कुल सत्यवादी व्यक्ति थे। ईमानदारी की प्रतिमूर्ति माने जाने वाले श्री मकोल जी जब अपने परिवार के भरण पोषण में आर्थिक कठिनाई का अनुभव करने लगे तो उन्होंने दो टाइपराइटिंग की मशीन खरीद ली एवं नौकरी के बाद बचे समय में टाइराइटिंग सिखाने का स्कूल चलाने लगे। टाइप राइटिंग का कार्य अच्छी प्रकार सम्पादित कर लेने वाले अपने विद्यार्थियों को श्री मकोल जी नौकरी दिलाने में भी सहायक रहते थे। उनकी सरकारी नौकरी के वेतन एवं टाइप राइटिंग स्कूल की फीस से उनके परिवार का भरण पोषण खूब अच्छी प्रकार से होने लगा। अब वे पूरे परिवार के साथ सानन्द जीवन यापन करने लगे। चित्तवृत्ति विरोध के कारण इस संसार में ऐसे विचारों के प्राणी भी है जो दूसरों को कष्ट में देखते हैं तो उन्हें प्रसन्नता होती है और दूसरों को आनन्द से जीवन यापन करते देखकर उन्हें महान कष्ट का अनुभव होने लगता है। वास्तविकता यह है कि वे अपने कष्ट से दुःखी नहीं हैं बल्कि आसपास वाले पड़ोसियों के सुखमय जीवन को देखकर दुःखी हैं। संस्कारवशात हमारे आदरणीय मकोल जी के पड़ोसी भी इसी वृत्ति के थे।

अपने कार्य को नियमानुसार, समयानुसार एवं ईमानदारी से करने वाले श्री मकोल जी का सुखमय पारिवारिक जीवन इनके पड़ोसियों को खटकने लगा। पड़ोसियों ने श्री मकोल साहब के परिवार पर एक ख्याति प्राप्त तांत्रिक द्वारा प्रेतबाधा करवा दी। फिर क्या था, श्री मकोल साहब एवं उनके परिवार पर विपत्तियाँ एवं कष्ट आने आरम्भ हो गये। पूरे परिवार की जिम्मेदारी भी अपनी चरम स्थिति में थी। लड़कियों की शादी के लिए उपयुक्त लड़के एवं घर की तलाश, बच्चे–बच्चियों की उच्च शिक्षा का प्रबंध करने के साथ ही बेईमान एवं रिश्वतखोर अधिकारी के विपरीत व्यवहार का आचरण आरम्भ हो गया। तांत्रिक ने उनके पूरे परिवार के सर्वनाश का जैसे ठेका ही ले लिया है। मकान के आँगन में अनायास ही पत्थर पड़ने लगते थे। पका पकाया भोजन अपने आप गिर कर गन्दे जमीन पर बिखर जाता था। खाद्य वस्तुएँ रखे जाने वाले पात्रों में माँस के लोथड़े एवं हड्डी पड़ी मिलने लगी। कमायी का पैसा बक्से के अन्दर से निकलकर

अपने आप आकाश द्वारा उड़कर जाने लगा। कभी–कभी अपने आप कपड़ों में आग लग जाती थी। बच्चियाँ सलवार कमीज पहनकर स्कूल जाने लगी तो उनके पहने हुए कपड़े अपने आप जलने लगे। मानो कष्ट का पहाड़ टूट पड़ा हो। दुःख एवं विपत्तियाँ अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गये। पूरे परिवार का जीवन महान नारकीय एवं दुखदायी हो गया।

अपने एवं अपने परिवार पर आयी विपत्तियों के निवारणार्थ, अपने शुभचिन्तकों की सलाह पर श्री मकोल जी अनेक स्थानों पर गये। अनेक देवी देवता मुल्ला एवं फकीरों के सामने हाथ जोड़कर नतमस्तक हुये परन्तु कहीं कोई लाभ नहीं हुआ। अपनी इन बाधाओं के निवारणार्थ वे प्रसिद्ध श्री बालाजी मन्दिर भी गये परन्तु सहन की पराकाष्ठा हो जाने पर श्री मकोल साहब ने पूरे परिवार के साथ जहर खाकर आत्महत्या करने का विचार पक्का किया। वे जहर खरीद कर ले आये एवं इस विचार के साथ मकान में सुरक्षित स्थान पर रख दिया कि रात्रि में भोजन में ही मिला कर सबको खिला दिया जायेगा।

परन्तु होनहार बलवान थी। विधाता की नियति कुछ और ही थी। जिस दिन उन्होंने रात्रि के भोजन में विष मिलाकर पूरे परिवार को खिलाने का मन बना लिया था, उसी दिन अपराहन एक अपरिचित व्यक्ति इनसे मिला एवं कहा कि आज तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ है एवं तुम बहुत उदास तथा दुःखी दिखलायी दे रहे हो। बताओ क्या बात है ? पहले तो श्री मकोल जी आनाकानी करते रहे परन्तु जब उसने कहा कि अपनी विपदा हमें सत्य–सत्य बतलाओ, हो सकता है कि मैं तुम्हारे परिवार का जीवन रक्षा का उपाय बतला सकूँ। उनकी प्यार भरी ये बातें सुनकर श्री मकोल जी फूट–फूट कर रोने लगे। उस महापुरुष ने इन्हें धीरज बँधाया एवं सांत्वना दी। इसके बाद श्री मकोल जी को लेकर वह व्यक्ति एकान्त स्थान में गया एवं कहा कि तुम अपनी सारी परेशानी हमें बतलाओ। हमारे तुम्हारे अलावा यहाँ तीसरा और कोई नहीं है। भाई श्री मकोल जी ने अपनी पूरी जीवन गाथा विपत्तियों के साथ बिल्कुल सत्य बयान कर दी। इस वर्णन में कई बार विचलित होकर वे रोये एवं उनकी आँखों से अश्रुपात भी हुआ। इनकी दुःखद जीवन गाथा सुनकर उस महापुरुष ने इन्हें सिद्ध सेवित श्री सिद्धगुफा का परिचय देते हुए बतलाया कि वहाँ पर एक सिद्ध योगीराज का आश्रम है, वहाँ चले जाओ उनको दर्शन एवं प्रणाम करो, यदि उनकी कृपा हो गयी, तो तुम्हारा कल्याण अवश्य ही हो जायेगा। वे उस महापुरुष की बात मानकर परिवार के बिना किसी सदस्य को बतलाये सीधे श्री सिद्धगुफा सवांई धाम की यात्रा आरम्भ किये एवं करीब आठ बजे रात्रि को सवांई धाम पहुँच गये। उन्होंने रात्रि विश्राम आश्रम पर ही किया। वहाँ पता लगाने पर पता चला कि यहाँ के महात्मा जी योग का प्रचार करने एक दिन पूर्व ही लाडवा चले गये हैं। श्री मकोलजी ने लाडवा का पता लिया एवं प्रातः काल लाडवा की यात्रा आरम्भ कर दी। लाडवा अपरिचित स्थान होने से वहाँ पहुँचने में काफी समय लग गया और ये तीसरे दिन लाडवा पहुँच पाये। वहाँ भी ये सायंकाल करीब सात

बजे उस गुरुभाई के यहाँ पहुँच गये जिसके यहाँ आराध्य देव जी का यौगिक प्रचार कार्यक्रम हुआ था। उस गुरुभाई ने इनका उचित आदर सत्कार किया एवं रात्रि निवास अपने यहाँ कराया। यद्यपि हमारे लाडवा वाले भाई श्री मकोल जी को साथ लेकर अगले प्रचार स्थली करनाल जाने का कार्यक्रम बनाये थे परन्तु कुछ ऐसी बाधा आ गयी कि वे साथ नहीं जा सके। उन्होंने श्री मकोल जी को श्री गुरुदेव की योग प्रचार स्थली करनाल पहुँचने का रास्ता स्पष्ट रूप से समझा दिया तथा साथ ही उन्हें अल्पाहार करा करके करनाल के लिए विदा किया। श्री मकोल जी उनके बतलाये हुए पथ पर चलते हुए, योग प्रचार स्थली करनाल अपराहन करीब दो बजे पहुँचे।

करनाल योग प्रचार स्थली पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ उपस्थित जन समूह का करीब तीन चौथायी हिस्सा विश्राम कर रहा है कारण यह था कि श्री गुरुदेव का प्रातः कालीन योग प्रचार कार्यक्रम करीब एक बजे समाप्त हुआ था एवं अधिकांश गुरुभाई बहन भोजन के बाद आराम कर रहे थे। योग प्रचार का सायं कालीन कार्यक्रम साढ़े तीन बजे से आरम्भ होने वाला था। भण्डारा चल रहा था, इन्होंने प्रसाद पाया एवं थोड़ी देर आराम किया। अपराहन करीब तीन बजे आदरणीय ब्रह्मचारी श्री ज्ञानी बाबाजी उठे, लघुशंका करके हाथ पैर धोये। वे ज्योंही हाथ पैर धोकर अपने आसन पर बैठे श्री मकोल जी ने उनके पैर पकड़ लिये एवं उनसे प्रार्थना करने लगे कि बाबाजी हमें महान कष्ट से मुक्ति दिलाइये। मुझे मुक्ति दिलाइये। एक अपरिचित व्यक्ति के मुख से ऐसे शब्द और ये क्रियाएँ देखकर श्री ज्ञानी बाबा जी आश्चर्य चकित थे। वे बार–बार यह कह रहे थे कि अरे भाई मैं महात्मा नहीं हूँ, मेरा पैर छोड़ दो क्यों मुझे परेशान कर रहे हो ? श्री गुरुदेव अलहदा है, अभी वे विश्राम कर रहे हैं। खैर किसी प्रकार श्री मकोल जी ने आदरणीय ब्रह्मचारी ज्ञानी बाबा के पैर इस शर्त पर छोड़ा कि वे योगेश्वर श्री गुरुदेव भगवान से उनकी मुलाकात करायेंगे। उसके बाद आदरणीय भाई श्री मकोल जी ने अपनी पूरी व्यथा कथा श्री ज्ञानी बाबा से निवेदित किया। कुछ समय पश्चात वह समय आ गया कि श्री त्रिलोकीनाथ आराम के बाद उठे एवं ज्ञानी बाबा जी को पानी लेआने की आवाज लगायी। आदरणीय श्री ज्ञानी बाबा ने कहा कि अच्छा भाई श्री गुरुदेव भगवान ने जल माँगा है, मैं जल लेकर जा रहा हूँ। थोड़ी देर बाद आऊँगा। आदरणीय ब्रह्मचारी श्री ज्ञानी बाबा जी श्री आराध्यदेव जी को जल पिला ही रहे थे कि श्री मकोल जी उस कोठरी में पहुँच गये जहाँ जगत नियन्ता परम करुणा निकेतन श्री गुरुदेव भगवान विराजमान थे। श्री मकोल जी ने साष्टांग प्रणाम निवेदित किया। श्री मकोल जी ने ज्योंही अपनी व्यथा कथा कहना आरम्भ की, श्री प्रभुजी ने आदेश दिया, लल्ला ज्ञानी ! पुष्प प्रसाद जल्दी ले आओ। श्री ज्ञानी बाबा जी ने पुष्प प्रसाद लाकर श्री आराध्यदेव जी के कर कमलों में दिया। श्री गुरुदेव भगवान ने इन्हें पुष्प प्रसाद देकर कहा कि–इस का आधा भाग अभी खा जाओ एवं शेष भाग अपने परिवार के सभी सदस्यों को

बाँटकर खिला देना। श्री प्रभु जी की कृपा होगी एवं तुम्हारा कष्ट दूर हो जायेगा। श्री गुरूदेव भगवान ने अपने मुखारबिन्दु से आज्ञा दी—लल्ला ! आज शाम हो चली है, तुम्हें काफी दूर जाना है, आज सत्संग का आनन्द प्राप्त करो, कल प्रातःकाल ही चले जाना। श्री गुरूदेव भगवान की आज्ञा अनमनस्क (न चाहते हुए भी) मन से मानकर इन्होंने रुककर सायंकालीन सत्संग का लाभ लिया एवं रात्रि विश्राम किया। अगले दिन प्रातःकाल पाँच बजे श्री गुरूदेव भगवान अपने आराध्य अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग योगेश्वर दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के स्वरूप की जब आरती करके खाली हुए तो श्री मकोल जी ने श्री गुरूदेव भगवान के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। श्री गुरूदेव भगवान ने मकोल जी को अभय कर कमलों से प्रसाद और आशीर्वाद देकर घर के लिए विदा किया। श्री गुरूदेव भगवान के प्रथम दर्शन के बाद एवं अपने घर प्रस्थान से पूर्व श्री मकोल जी ने करीब बीसों बार अपने परिवार के कष्ट निवारणार्थ श्री चरणों में प्रार्थना की थी। शायद उनके सांसारिक मन को यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि इतना बड़ा कष्ट का पहाड़ मात्र पुष्प की कुछ पंखुड़ियों से कैसे ठीक हो जायेगा। विदा लेते समय, प्रणाम करने के बाद श्री गुरूदेव भगवान ने अपने मुखारबिन्दु से कहा था कि लल्ला ! घबराने या परेशान होने की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है, तुम्हारे कष्ट की निवृत्ति अवश्य-अवश्य हो जायेगी।

अमोघ प्रसाद लेकर श्री मकोल जी अपने घर की यात्रा पर चल दिये। रास्ते भर उन्हें ऐसा आभास होता रहा मानो सवारियों से भरी गाड़ियाँ मात्र इन्हीं के इन्तजार में खड़ी हैं। इस प्रकार सुखमय यात्रा का अनुभव लेते हुए श्री मकोल जी ने रात्रि करीब पौने दस बजे अपने मकान में प्रवेश किया। उचित पारिवारिक अभिवादन के पश्चात उनकी धर्मपत्नी ने कहा कि आप बिना किसी को बतलाये कहाँ चले गये थे, हम सभी लोग काफी चिन्तित थे। किसी अनहोनी की बात सोचकर इन्होंने साश्चर्य पूछा कि क्या कोई विशेष विपत्ति आ गयी। उनकी धर्मपत्नी ने निवेदन किया कि नहीं पतिदेव, ऐसी बात नहीं है। आप जब से गये हैं उत्तरोत्तर कष्ट एवं प्रेत बाधायें कम होती चली गयी एवं कल अपराहन तीन बजे से प्रेत बाधायें एवं कष्ट हैं ही नहीं। अपनी भार्या के मुख से यह सुखप्रद वाक्य सुनकर मकोल जी की आँखों से अश्रुपात होने लगा। यह अपराहन तीन बजे का वही समय है जब आदरणीय भाई श्री मकोलजी ने सर्वप्रथम अनाथनाथ के चरणों में प्रथम साष्टांग प्रणाम निवेदित किया था। इसके बाद श्री मकोल जी ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को अपने पास बैठाकर श्री गुरूदेव के दर्शनार्थ निकलने वाली यात्रा का, उनके सत्संग लाभ का और उनसे विदाई लेने से लेकर यात्रा समाप्ति का सविस्तार वर्णन किया। इस प्रसंग के वर्णन में कई बार उन्हें रोमांच हुआ अश्रुपात तो पूरे समय तक ही होता रहा।

उसके बाद पड़ने वाले योग महोत्सव चैत्र शुक्ल नवमी को जो हमारे आपके दादा गुरूदेव

श्री रामलाल जी महाराज का प्राकट्य दिवस है, सिद्धसेवित, त्रिलोक बन्दित श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम पर अपने परिवार के सभी सदस्यों के साथ जाकर इन्होंने सपत्निक योग दीक्षा श्री गुरुदेव से प्राप्त की एवं उनके अभय चरणों में साष्टांग प्रणाम कर सत्संग का लाभ उठाया। उसके बाद का उनका जीवन बड़ा ही सुखमय रहा। समय से अपने सभी बालगोपालों का वैवाहिक संस्कार उन्होंने आराध्यदेव के आशीर्वाद से किया। इनके परिवार में आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का जो दिव्य स्वरूप विराजमान है उसकी विधिवत आरती पूजन उसी समय से प्रातः सायं नियमित आरम्भ हो गयी थी। अपने शिष्यों पर तो सभी गुरुदेव कृपा करते हैं एवं उनके भय रोग निवारण किया करते हैं परन्तु एक अपरिचित कष्ट पीड़ित परिवार पर अहैतुकी कृपा की ऐसी मिसाल हमारे श्री प्रभु दरबार को छोड़कर अन्यत्र कहीं मिलना असम्भव नहीं तो दुर्लभ तो है ही। हमारे एक आदरणीय गुरूभाई ने बिल्कुल हकीकत लिखा है कि–

मेरे सद्गुरू के दरबार में, दुःख दर्द मिटाये जाते हैं।
दुनियाँ से सताये लोग यहाँ, सीने से लगाये जाते हैं।।

प्र तद्वोचेदमृतं तु विद्वान् .
गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
यस्तानि वेद स पितुः पिता सत्।।

'गन्धर्व (वेदविद्या का धारण करने वाला) विद्वान (ब्रह्मवेत्ता) उस अमृत ब्रह्म का प्रवचन–खोल–खोल कर व्याख्यान करे, जो ब्रह्म गुहा (बुद्धि या ब्रह्माण्ड) में स्थित है और जो सत् तथा आनन्दमय है। उसके तीन पद गुहा में निगूढ (अत्यन्त गुप्त) हैं। उन पदों को जो जान गया वह पिता का भी पिता (गुरु) है।'

संस्कार शक्ति व साधना शक्ति (भाग ५)

कु० रुक्मिणी वर्मा, सहारनपुर

गहन दृष्टि से विचार करें तो भारतीय संस्कृति का प्रत्येक पहलू विज्ञान की कसौटी पर खरा है। संस्कारों की जितनी सुरक्षा भारतीय संस्कृति में पायी जाती है, उतनी अन्यत्र नहीं। भारतीय संस्कृति में भी हिन्दू शास्त्रो में सुसंस्कारों का पूर्ण पोषण पाया जाता है। अन्य शास्त्रों में सुसस्कृति का पूर्ण चन्द्रमा देखने को नहीं मिलता। अतः प्राचीन हिन्दू शास्त्रीय पद्धति मनुष्य का सर्वांगीण विकास उपलब्ध कराती है। जीवन का प्रत्येक व्यवहार सधा हुआ हो और मनुष्य सहज ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करता हुआ इस भवसागर से पार हो जाये, इसके लिए हमारे आर्ष ग्रन्थों में वे मापदण्ड दिये गये हैं, जिन पर चलकर मनुष्य के शुभ संस्कारों की रक्षा होती है और साधना को बल मिलता है। गृहस्थाश्रम से पहले गुरुकुलों में जो विद्या प्रदान की जाती थी, उस विद्या का प्रत्येक पहलू इसी विज्ञान पर आधारित था कि मानव ये मापदण्ड जीवन में धारण करके शुभ संस्कारों का रक्षण करता हुआ आने वाली पीढ़ी को थाथी में सुसंस्कार सहज प्रदान कर सके और मानव जाति सुगमता से भवसागर तर जाये, कहीं पर कोई बाधा न आये। अतः **''संस्कार शक्ति व साधना शक्ति''** नामक प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए आइये विचार करते हैं **'भूमि के संस्कार'** पर— .

जैसा कि पूर्व प्रकाशित अंक में आधुनिक जीवन शैली का वर्णन करते हुए कहा गया था कि आधुनिक जीवन को चार्वाक जीवन (चार्वाक दर्शन पर आधारित जीवन) कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं क्योंकि चार्वाक जीवन का मात्र सुख प्राप्ति ही उद्देश्य है, जैसा कि सूत्र से भाषित होता है—

यावत् जीवेत सुखम जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः।। **चार्वाक दर्शन।।**

अर्थात् जब तक जिओ, सुखपूर्वक जिओ, न हो तो कर्ज लेकर भी घी पिओ, ये देह तो भस्म हो जायेगी, कौन जाने पुनरागमन होगा भी कि नहीं।

इसी धारा में जीने वाले लोग इस प्रकार अपने संस्कार बिगाड़ते हैं कि फिर योनि चक्र से छुटकारा पाना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार के लोग यह नहीं जानते कि हमारे इर्द–गिर्द परमात्मा की वह सरकार हर समय रहती है, जो बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के कुकर्मों व सुकर्मों को नोट करती रहती है।

श्री योगेश छिब्बर 'आनन्दजी' कितना सटीक लिखते हैं—

न कानून, न सरकार, हमारे चौकीदार, संस्कार।।

(तुम अपनी प्यास जितने हो' से उद्धृत)

परन्तु चकाचौंध भरे विषयों के सेवन से इन लोगों की बुद्धि में कोई सुसंस्कारी बात बैठती

ही नहीं। जब इस प्रकार का जीवन जीने वाले लोगों से सम्पर्क होता है तो अच्छी तरह बात तर्क–वितर्क का रूप धारण कर लेती है और किसी भी प्रकार का उदाहरण समझने को तैयार नहीं होते, तब बड़ी हैरानी होती है, दाँतों तले अंगुली दबाकर मात्र अफसोस मनाने व गहरी सोच में चले जाने के अलावा कोई चारा नहीं रह जाता. उस समय कुछ पंक्तियाँ याद आती रहती हैं, जिनमें मनुष्य की उस दीन हालत का वर्णन किया गया है, जब उसका तन भी शव बनकर जला दिया जाता है और मात्र भोग–योनि में वेदना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। लाख मुट्ठी खाक की बनाकर (करते डर पारस मणि देही, काँच किश्चि बदले तै लेही) मनुष्य अपने किये पर पछताते हुए कहता है–

मैं पंछी था मुक्त गगन का, मस्ताना था मस्त चमन का,
मालिक था आनन्द राशि का, दुख का सागर भर लाया।
देख दशा अपनी रोया, 'मैं' देख दशा अपनी रोया।।
मैं पंछी......................

१ अन्त समय जब छूटी काया, यमदूतों ने शूल चुभाया।
यम के कोड़े खाते–खाते, दर्दीला स्वर भी खोया।।
देख दशा अपनी रोया, 'मैं'..................

२. कर्म योनी मानुष तन पाया, कर्म भूमि में पाप कमाया।
मैं माली मुक्ति बगिया का, बीज चौरासी का बोया।।
देख दशा अपनी रोया, 'मैं'..................

३. मन इन्द्री का दास बना मैं, यमपुर में उपहास बना मैं।
अमृत कुण्ड था घट भीतर, बछड़ा बन विष का थन चोपा।।
देख दशा अपनी रोया, 'मैं'..................

४. मैली चादर आया था धोने, राग–द्वेष के छींटे दीन्हें।
करता गया दिन पर दिन मैली, एक दाग भी न धोया।।
देख दशा अपनी रोया, 'मैं'..................

५. लगते थे जो मेरे अपने, बनके आते भी नहीं सपने।
नाहक ही रिश्तों का मैंने, दिल पर है बोझा ढोया।।
देख दशा अपनी रोया, 'मैं'..................

६. खोले यम कर्मों के खाते, नरक यातना दे तड़फाते।
जागा नहीं कभी हरि सुमिरन में, मोह निशा हर पल सोया।।
देख दशा अपनी रोया, 'मैं'..................

७. तेज पुँज हृदय का होकर, दीन–हीन बनके रोया।
त्यागी बनता हरिपद मिलता, भोगी बन सब कुछ खोया।।
देख दशा अपनी रोया, 'मैं'....................

उपर्युक्त कविता में जो वेदना छिपी है, उसे अहसास में लाकर देखो तो, एक बार 'मैं' स्वयं को रखकर देखो तो सही, तुम्हें वैराग्य की सुगन्ध आयेगी, भक्ति में पदार्पण होगा। अरे भले मानव ! काहे को सुख के पीछे पड़ा है। सुख तो दुःख की हल्की सी कमी का मात्र अहसास है। आनन्द तो सुख–दुःख से परे की अवस्था का नाम है। वह आनन्द ही सत्य व नित्य है, तभी तो उस परमात्मा का नाम सत् + चित् + आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द है। आनन्द को 'योग साधना' द्वारा मुट्ठी में कैद किया जा सकता है, सुख को नहीं क्योंकि सुख नश्वर है। नश्वर कभी स्थायी नहीं होता। फिर सुख तुझे तेरी मर्जी से मिलेगा भी नहीं, जो कुछ भी मिलेगा तेरे कर्मों के अनुरूप मिलेगा। इसलिए आधुनिक जीवन शैली (पाश्चात्य शैली) में जीने वाले पक्षधरों ! चेतो, समय निकलता जा रहा है, व्यर्थ अभिमान में मत जियो। उस मालिक की मर्जी के आगे सब कुछ ढह जायेगा। उसके आगे बड़े–बड़े धुरन्धर भी फेल होते हैं। जरा निम्नलिखित कविता में झाँककर देखो और सच्चाई को छुओ–

१. हँसी हँसता था अभिमान की खुदगर्जी के आगे।
सचमुच रोया है इन्सान, तेरी मर्जी के आगे।।
२. हवा से बातें करता था, समझ के हीन दुनिया को।
घुटने टेक गया इन्सान, तेरी मर्जी के आगे।।
३. आज भी मौत जीवन का, है जादू तेरे हाथों में।
नकारा हो गया विज्ञान, तेरी मर्जी के आगे।।
४. जहाँ पर नाज होता था, हरियाली देख बस्ती की।
तबाही मचा गया तूफान, तेरी मर्जी के आगे।।
५. सुधारक बन समाज का जो, गर्व बुद्धि पे करता था।
कि बेटा हो गया शैतान, तेरी मर्जी के आगे।।
६. सच को गूँगा कर दिखाया, न्याय भी अन्धा कर दिया।
पर करना पड़ा भुगतान, तेरी मर्जी के आगे।।
७. कारखाने, नौकर, गाड़ियाँ मिली औलाद न गोदी में।
बँगला हो गया वीरान, तेरी मर्जी के आगे।।
८. बना दूल्हा, मधुर बाजे, बढ़े ज्यों ही कदम आगे।
मौत का आ गया पैगाम, तेरी मर्जी के आगे।।
९. सजायी राज सपनों की लगा बिस्तर ख्यालों का
कफन में सो गया इन्सान, तेरी मर्जी के आगे।।

१०. नाकाम हर कोशिश, जली खुशियाँ, सोना भी मिट्टी हो गया।
सचमुच हार गया इन्सान, तेरी मर्जी के आगे
११. तराना छेड़ा बुलबुल ने, घात नीड़ पे थी विषधर की।
टूटी वीणा की सब तान, तेरी मर्जी के आगे।।
१२. बड़ा रुतबा था जिस दर का, हँस मोती, भिखारी भूमि पाते थे।
नसीब शव को न हुआ शमशान, तेजी मर्जी के आगे।।

अतः हे मानव अपनी मर्जी का मालिक मत बन। उस मालिक की मर्जी पर अपनी मर्जी न्यौछावर कर दे। नवीन सुकृत्य करके पुराने संस्कारों को काटता चला जा, तेरा उद्धार हो जायेगा। इधर–उधर सुख की तलाश में मत भटक। दुख में घबराकर गलत कर्म करने पर मजबूर न हो, क्योंकि हो सकता है दुख काटकर भी तुझे सुख की अनुभूति मिले। क्योंकि दुःख भोगकर तो कर्म–संस्कार कटते हैं, बोझ हल्का होता है और नैय्या किनारे की ओर जाने लगती है। अतः प्रारब्ध भोगने में डर मत।

हो सकता है, दुख ही वह द्वार हो, सुख जिसके पार हो।

और अगर तू सच्चा पुजारी है सुख की तलाश का तो वे मापदण्ड अपना जो जीवन के सच्चे मोती हैं अर्थात् जिस कार्य को करने से तुझे भी सुख पहुँचे और दूसरे का अहित भी न हो। सुकृत्य की पहचान मात्र यही है, जिसके करने से अपना व दूसरे का भला हो, दोनों में से किसी का भी बुरा न हो। अतः सुख–दुख से परे आनन्द की अवस्था को पाने के लिए 'योग साधना' कर। सच्चे साधक को, सच्चे जिज्ञासु, सच्चे पिपासु के लिए कहीं कुछ भी अप्राप्य नहीं। जैसा कि–

चाहे देर से भी दूर है, मगर हर 'प्यास' के लिए,
कहीं एक 'समंदर' जरूर है। (तुम अपनी प्यास जितने हो)

अतः सर्वप्रथम अपनी आनन्द रूपी 'कुटिया' की नींव को ठीक कर। जब नींव मजबूत होती है तो उस पर खड़े महल को कोई भी तूफान नहीं हिला सकता, भयंकर से भयंकर भूकम्प के झटके भी मजबूत नींव को हिला नहीं सकते।

कहने का तात्पर्य यह कि जिस निवासित भूमि पर तू पैदा हुआ है, दिन–रात तेरा बसेरा है, उसी भूमि पर अच्छे संस्कार बो। फिर देख वही तेरा आश्रम, मन्दिर, गुरुद्वारा व बैकुण्ठ हो जायेगा। बाहर की भूमि पर सुख की तलाश में कुछ समय रहकर फिर भी घर में ही आना पड़ेगा। शाही मिजाज अपने घर में ही फबता है, दूसरे का घर थूकने का भी डर। 'भूमि के संस्कार' किस प्रकार तुम्हारे अन्य संस्कारों का रक्षण व भक्षण करते हैं, जरा विचार करिये–

'भूमि के संस्कार'

भूमि का हमारे जीवन में सबसे अधिक महत्त्व है क्योंकि हम जब पैदा होते हैं, तो हमारी देह को भूमि का आधार मिलता है टिकने के लिए। भूमि पर सरक–सरक कर, लेट–लेट कर,

धूल में सनकर, घुटनों के बल चलकर हमारी देह मजबूत बनती है। शरीर के पोषण के लिए जो भी आवश्यक तत्व चाहिये वह सब भूमि पर ही उगाये जाते हैं अतः जो द्रव्य हमारे अन्दर पहुँचकर देह की वृद्धि करता है वह सब माटी से प्राप्त होता है, हमारी देह को उत्पन्न करने वाले माता–पिता की देह भी माटी के सुरससार से परिपूर्ण होती है अतः हमारी देह को माटी का पुतला भी कहा जाता है। इस माटी (भूमि) का प्रति उपकार तो कोई करोड़ जन्मों में भी नहीं कर सकता, मगर इस माटी पर रहकर सुन्दर सुकृत्य करके इस पृथ्वी माता को आह्लादित तो कर सकते हैं। अतः जिस भूमि पर हम रहते हैं हमें उस पर अच्छे संस्कार बोने चाहिये। जिस भूमि (घर) में सुयोग्य चरित्रवान व्यक्ति रहते हैं उस घर में पुण्यात्मायें भी जन्म लेने के लिए तरसती हैं। जिस भूमि पर जिस प्रकार के चरित्र वाले लोग रहा करते हैं, उनके शरीर से निकले परमाणु उस भूमि पर फैलकर एक घेरा सा (आवरण) बना लेते हैं, वहाँ का कण–कण इन परमाणुओं से भरा होता है। यही कारण है कि आर्ष ग्रन्थों में गृहस्थी के लिए कुछ नियम संयम बनाये गये, जिनका पालन करके उनका चरित्र महान बनता था और निवासित भूमि सुसंस्कारी रहती थी ताकि पुण्यात्मा वहाँ जन्म ले सके। परन्तु आजकल तो निवासित भूमि की इस प्रकार दुर्दशा कर दी गयी है कि भगवान को भी शायद राक्षस व शैतान और उग्रवादी प्रवृत्ति वाले जीव भेजने में आसानी हो गयी है, पुण्यात्मायें तो सद्गृहस्थ के लिए तरस गयी हैं। सुबह उठना नहीं, उठे देर से और शौच आदि भी तब जायेंगे जब म्यूजिक सुनने को मिलेगा। उठते ही टी०वी० टेपरिकार्डर जोर–जोर से चलायेंगे। खुद तो भजन–साधना करते नहीं म्यूजिक की आवाज जोर–जोर से करके पड़ौस में कोई योग–साधना कर रहा हो तो उसकी साधना करना भी हराम कर देते हैं, ऐसे व्यक्तियों को कैसे समझायें कि किसी की साधना में अपने कारण जो विक्षेप आता है, वह कितना बड़ा पाप का भागी अपनी नासमझी के कारण अनायास बन जाता है। यह तो बात रही केवल ध्वनि की, सुबह धूप–दीप की सुगन्ध के स्थान पर लहसुन और प्याज का तड़का लगाकर दुर्गन्ध फैलाते हैं, बताइये क्या देवी देवता ऐसे घरो में दुर्गन्ध लेने घरों की तरफ मुँह करेंगे। स्वच्छता तो पता ही नहीं कि क्या होती है थोड़ा बहुत सफाई का अर्थ जानते हैं झाडू पोंछा, वह भी नौकर करेगा। बीड़ी सिगरेट के धुएँ उड़ाये जाते हैं। और घर में गंगाजल की जगह छिड़की जाती है पान की पीक। किसी–किसी के तो घर के कई कोने व वाशबेसिन बस लाल–लाल ही दिखायी देते हैं। घर के दरवाजों पर भी दीवार पर निशान देखे जा सकते हैं। और तुलसी दल मिश्रित जल के स्थान पर पी जाती है शराब। पूरे घर में दुर्गन्ध व हाय हुल्लड़ के अलावा कुछ मिलता ही नहीं। जब उसका (परमात्मा का) कोई कार्य पूजा नहीं बस 'तेरी–मेरी', 'तू–तू', 'मैं–मैं' तो भला शान्ति वहाँ कैसे आयेगी।

उधार नहीं ली 'जिन्दगी' को कैश करो।
खाओ पिओ मौज लो और ऐश करो।।

ऐसी जिन्दगी जीने वालों को परमात्मा फिर सुन्दर सा मकान नहीं देता। चौपाया बनाकर

खौर के पास खड़ा रहने पर मजबूर कर देता है लो खाओ भी यहीं, पिओ भी यहीं तथा दुर्गन्ध फैलाते थे मानुष योनि में तो लो यहीं मलमूत्र का विसर्जन भी करो, जो परमात्मा से नहीं बंधता तो गलियारी कुत्ता बनाता है। उसे परमात्मा सुअर की योनि दे देता है ले दुर्गन्ध खा, दुर्गन्ध में ही रह। गन्दी नाली का कीड़ा बना देता है, ले यहीं सड़, गल, मर। चील–कौआ बना देता है कि तूने मानुष योनी में मांस खाया है ले अब मांसाहारी पशु–पक्षी बना। सड़े–गले शवों को नोंच–नोंच कर खाने पर मजबूर कर देता है परमात्मा उनको जो ईश्वर के दिये हुए 'प्रसाद' इस 'मनुष्य तन' का अपमान करता है, इससे कुकृत्य करता है। उन योनियों में फिर हरि–हरि, राम–राम भी नहीं निकलता। ये अक्षर व व्यंजन तो फिर जुड़ते ही नहीं। चीं चुं, काँव–काँव, कूं–कूं, उ–ऊ, मीं–मीं, म्याऊँ–म्याऊँ, भौं–भौं, टर्र–टर्र, चौं–चौं, हे–हे, चें–चें, साँय–साँय, सर–सर, ऊया–ऊया, ढेंचू–ढेंचू, आऊ–आऊ, टें–टें, भिन–भिन बस इस तरह के स्वर व व्यंजन ही मेल खाके शब्द निकलते हैं, जहाँ चाहते हुए भी श्री हरि, श्री राम, वासुदेव, प्रभु, परमात्मा शब्द तो बनते ही नहीं। इसलिए जो परमात्मा से धोखा करता है, वह स्वयं को धोखा देता है। कितना विचित्र शब्द है 'धोखा' अर्थात् धो + खा। अब परमात्मा भी नहले पर दहला फेंकता है और कहता है कि तुमने मुझे व मेरे रचे प्राणियों को दिया है धोखा अब तू ही धो और तू ही खा। अर्थात् अपने कुकर्मों के कारण कुसंस्कारों के मल को निःकृष्ट योनियों को भोगकर इस मल को धो और गन्द फैलाया था उस गन्द को खा। तू ही धो, तू ही खा, ले आकर धोखा।

अतः परमात्मा को धोखा न देकर उसके दिये प्रसाद 'देह' और 'गेह' (गृह, घर) की कदर करें। निवासित भूमि पर अच्छे कार्य करें, चाणक्य नीति में वर्णन मिलता है–

न विप्रपादोदककर्दमानि, न वेदशास्त्र ध्वनिगर्जितानि।
स्वाहा स्वधाकार विवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि।।

–चा०नी० १२/१०११

अर्थात् जिस घर में ब्राह्मण या मुनि के चरणों के धुले हुए जल से भूमि न सींची गयी हो, न वेद–शास्त्र की ध्वनि हो, न घर में 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण हो (हवन) और न स्वधा (पितृ कार्य) हो। वह घर श्मशान के समान है।

अतः हमें अपने घर को घर नहीं 'आश्रम' बनाना चाहिये। जहाँ ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए ब्रह्म जैसा आचरण करके, विद्या को ग्रहण करके श्रम करते हुए रहना होता है, उस स्थान को 'ब्रह्मचर्याश्रम' अथवा 'गुरुकुल' कहा जाता था और जहाँ गृह में आस्था करके गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए श्रम के साथ रहा जाता है उसे **'गृहस्थाश्रम'** कहा जाता है। परन्तु आजकल गृहस्थाश्रम के साथ अन्याय किया जा रहा है। हमें हर तरह से घर की भूमि पर सत्कार्य करने ही होंगे, तभी वहाँ दिन–रात शान्ति रह सकती है नहीं तो तनाव व रोगों से मुक्ति किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। जब भूमि के परमाणु ठीक नहीं तो वहाँ सत्कार्य में रुचि भी नहीं रहेगी। किसी

भी 'भूमि के संस्कार' मनोदशा में परिवर्तन करके किस प्रकार संस्कारों का रक्षण-भक्षण करते हैं, इसे उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट करने के लिए आइये पढ़ते हैं एक इतिहास-

रावण की पत्नी 'मन्दोदरी' 'मय' दानव की पुत्री थी। 'मय दावन' ने जिस भूमि पर अपना साम्राज्य स्थापित कर रखा था, उस भूमि को 'मयराष्ट्र' के नाम से जाना जाता था। 'मय' नामक इस राक्षस ने इस भूमि पर अपने अनुचरों के साथ इतने भयंकर अत्याचार किये कि यहाँ से सभी ऋषि-मुनि-तपस्वी तथा सभी सज्जन मनुष्य इस स्थान को छोड़कर चले गये क्योंकि कोई भी सत्कार्य इस भूमि पर नहीं करने दिया जाता था। कुछ समय बाद मय ने अपना साम्राज्य किसी कारण कहीं अन्य स्थान पर बनाया अथवा उसे कहीं अन्यत्र किसी कारण छुप कर रहना पड़ा, कहा नहीं जा सकता। परन्तु इस भूमि पर वह बहुत दीर्घ काल तक रहा। समय बीतता गया और 'मयराष्ट्र' से बिगड़कर इस साम्राज्य का नाम 'मयराठ' हो गया। अधिक समय बीता और 'मयराठ' से बिगड़कर इसका नाम 'मेराठ' और 'मेराठ' से बिगड़कर इस स्थान का अब वर्तमान नाम 'मेरठ' है। यह 'मेरठ' इस समय एक अच्छा बड़ा शहर यू०पी० के अन्तर्गत सहारनपुर से आगे मुजफ्फरनगर और बागपत जिले के बीच है। मेरठ जिला यू०पी० का प्रसिद्ध जिला है। एक बार श्रवण कुमार अपने माता-पिता को काँवर में बैठाकर तीर्थयात्रा करा रहे थे तो रास्ता भटक गये और इस भूमि की ओर आ गये। यहाँ उन्हें कोई भी व्यक्ति दूर-दूर तक दिखायी नहीं दिया। जैसे ही श्रवण के कदम इस भूमि (मयराष्ट्र) पर पड़े तो इनकी मनोदशा में परिवर्तन होने लगा, इनकी सोच बिगड़ गयी। इन्हें इस भूमि के नाम तथा दुष्प्रभाव के विषय में कुछ भी ज्ञान न था। चलते-चलते 'भूमि के संस्कारों' ने इनके चित्त पर अपना प्रभाव जमाया और ये सोचने लगे कि मैं व्यर्थ ही इन दोनों का बोझ ढो रहा हूँ, ये दोनों तो अन्धे हैं, भला इन्हें तीर्थों के दर्शन का क्या लाभ ? ये दोनों बूढ़े हैं, इन्हें अब एक स्थान पर ही रहना चाहिये। क्यूँ न इन्हें यहीं छोड़ दूँ। माता-पिता को बोझ समझते-समझते इनकी चाल मन्द पड़ गयी, इनके कदम भारी हो गये, भक्ति की जगह मन में अशान्ति छा गयी। इधर काँवर में बैठे माता-पिता के हृदय में बेचैनी और अशान्ति छा गयी। उन्हें लगा, मानो कोई उनका गला दबा रहा है, उनकी शान्ति व पुत्र छीन रहा है, कोई उन पर अत्याचार करना चाहता है, कोई राक्षसी प्रवृत्तियाँ उनके पीछे पड़ी हैं, वे शैतानों के बीच घिर गये हैं। अधिक अकुलाहट के कारण इन्हें प्यास लगी। अतः पुत्र से कहा, 'बेटा हमें बहुत प्यास लगी है, कहीं आस-पास पानी हो तो पिला दो।'' श्रवण चुप रहे। फिर माता-पिता ने पूछा, ''बेटा ! तुम चुप क्यों हो ? इतने अनमने से तो तुम कभी नहीं लगे, हमने भी इतनी बेचैनी और अशान्ति कभी महसूस नहीं की।'' श्रवण फिर भी चुप रहे। तब फिर माता-पिता ने कहा कि बेटा ! ये कौन सा स्थान है ? हमें लगता है, यह स्थान ही बहुत दूषित है, यहाँ आकर हमारा दम घुटता जा रहा है। ''श्रवण चुपचाप उन्हें वहीं बैठाकर पानी लेने के बहाने चलने लगे। चलते-चलते जब दूर जा पहुँचे और वह भूमि जो 'मयराष्ट्र' के अन्तर्गत

आती थी, उसे पार कर गये तो इनकी बुद्धि ठीक हो गयी और एकदम सात्विक विचार आते ही दिमाग को झटका लगा कि हाय–हाय ये मैंने क्या पाप का उपक्रम किया ? मैं तो माता–पिता के अलावा दूसरा भी कोई भगवान है, इस बात को जानता भी नहीं और उन्हीं माता–पिता रूपी भगवान के विषय में मेरे मन में 'बूढ़े', 'अन्धे' व 'बोझ' जैसे कुत्सित विचार आये। छिः–छिः धिक्कार है मेरे जीवन पर। मैं पापी, अपराधी तथा अन्यायी हूँ। हे प्रभु ! मेरा अपराध कैसे दूर होगा, मैं क्या और किस प्रकार का प्रायश्चित करूँ। कुछ दूरी पर श्रवण को एक साधू दिखायी दिये जब साधू को श्रवण ने रो–रोकर अपनी सारी मनोव्यथा बताई तो उन्होंने श्रवण से कहा कि इसमें तुम्हारा तनिक भी दोष नहीं है। तुम जिस भूमि से होकर आ रहे हो, इसका दुष्प्रभाव ही ऐसा है क्योंकि यह भूमि राक्षसों से सेवित है तथा इसका नाम मयराष्ट्र है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं रहता कि इस स्थान पर आते ही बुद्धि बिगड़ जाती है और राक्षसी प्रवृत्तियाँ मन में घर कर लेती हैं। श्रवण तुरन्त दौड़े और अपने माता–पिता को दृढ़ संकल्प के साथ तीव्र गति से वहाँ से निकाल लाये और अपने मन की सब व्यथा तथा इस भूमि के विषय में सब-कुछ बताकर उनसे क्षमा–याचना करने लगे।

ध्यान देने योग्य बात है कि श्रवण कुमार सात्विक मन वाले तथा भक्त प्रवृत्ति के थे, इसलिए केवल विचारों में ही परिवर्तन हुआ कोई अनर्थ कृत्य न कर पाये, यदि साधारण व्यक्ति दूषित भूमि पर जाने का उपक्रम धोखे से कर बैठते हैं तो दुष्कर्म होने का खतरा मुश्किल से टलता है अन्यथा दुष्कर्म हो ही जाते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण (श्रवण की कथा) से इस बात की स्पष्ट पुष्टि होती है कि 'भूमि के संस्कार' किस प्रकार मनोगति बदलने में सहायक होते हैं यही सिद्धान्त अच्छी सुसंस्कारी भूमि के विषय में भी लागू है। हमारा परम पावन धाम 'श्रीसिद्धगुफा' सवाई (एत्मादपुर) आगरा जो हमारे दादा गुरुदेव परमप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी एवं योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी की अतिशय प्यारी योगभूमि है। यह भूमि 'दिव्य भूमि' है, इस भूमि को अर्थात् 'श्री सिद्धगुफा' धाम को नित्य प्रति हजारों–हजारों वर्ष के सिद्धयोगी जो नेपाल धाम पर समाधि में लीन रहते थे, नित्य शीश झुकाने व श्री महाप्रभु जी व गुरुदेव को प्रणाम करने आते हैं। इस भूमि पर योगेश्वर व सिद्धेश्वर द्वय की तेज किरणें हर समय फैली रहती हैं। श्री सिद्धगुफा की रज में श्री प्रभुजी का दिव्य वरदान है। अतः जो भी यहाँ रहकर साधना करेगा उसके संस्कारों का चक्र कटेगा। परन्तु श्री प्रभुजी एवं गुरुदेव की लीला रहस्यमयी है। उन्होंने यहाँ फैले तेज को इस प्रकार समेट रखा है कि हर किसी को अब इसकी छटा मिलना आसान नहीं है। इसका अनुमानतः एक मोटा सा कारण यह भी हो सकता है कि हर आने वाला नया व पुराना साधक आवश्यक नहीं कि साधना के क्षेत्र में स्वयं को हर ओर से तपाने वाला हो। निन्यानवे प्रतिशत व्यक्ति ये ही चाहते हैं कि करना धरना कुछ न पड़े बस धाम पर आयें और

ध्यान लग जाये। जब तक व्यक्ति स्वयं को न तो गुरूदेव के अंकुश में रखना चाहता तथा न ही यम–नियमों में ढलना चाहता तब तक तो ध्यान लगना भी ठीक नहीं क्योंकि ध्यान का सीधा सा अर्थ है मन की एकाग्रता और मन की एकाग्रता का मतलब है। मन में शक्ति का वास। यदि शैतानी मन में गुरूदेव ध्यान की ताकत दे दें तो क्या होगा? यही होगा–तेरा नाश, मेरा नाश, सबका सत्यानाश, दो को वरदान सौ को अभिशाप, भस्मीभूत कर देंगे सबको। इसीलिए गुरुदेव उस दिव्य कृपा प्रसाद 'मन की एकाग्रता' को सहज ही नहीं देते। जब तक बर्तन में छेद है तो अमृत रस कैसे टिकेगा। इस बात के लिए गुरुदेव यही कहा करते थे–**"भाण्डे मिले** पर चौन्दे मिले।"

श्री प्रभु जी के तेज की एक किरण को पकड़कर श्री मुल्खराज जी लोक लोकान्तर घूम आये परन्तु उस किरण के ओर–छोर को न पा सके। ऐसे अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री प्रभुजी व गुरुदेव जी का अखण्ड तेज उनकी पावन भूमि श्री सिद्धगुफा सवांई, अलुपुर, ऋषिकेश व अमृतसर में प्रचण्ड रूप में क्यों न होगा परन्तु इस दिव्य तेज को उन्होंने रहस्यमयी ढंग से आत्मसात कर रखा है क्योंकि अधिकांश लोग तो खाने–पीने, मौज बहार के लिए आते हैं। सुबह पाँच बजे आरती में दस–बारह या बीस लोग ध्यान क्लास व जीवनतत्त्व क्लास में दस पाँच लोग बाकी सब शयन मुद्रा क्लास में मिलते हैं। प्रवचन भले ही इस समय हमारे ब्रह्मचारी गुरुभाई अथवा अन्य विद्वान लोग करें पर प्रवचन तो योग के ऊपर ही हो रहे होते हैं। उस श्रवण क्लास में गिनती के लोग। मंच पर संकीर्तन करने वाले संकीर्तन करते हैं। परन्तु सुनने वाले गिनती के लोग और भण्डारा क्लास में देखो तो गिनती भी नहीं होती। एक पंक्ति गिनो तब तक दूसरी, पहली में बिना टाट–पट्टी के बाँये–दाँये बैठ जायेंगे। वहाँ भण्डारे के ध्यान में सटकर बैठना मन्जूर परन्तु ध्यान कक्ष व आसन कक्ष में खुला–खुला स्थान भी गँवारा नहीं। अब खाओ–पिओ मौज लो और ऐश करो को चरितार्थ करने वाले लोगों का श्री प्रभुजी के तेज का जरा सा प्रभाव मिल जाये तो सारी ध्यान शक्ति घर जाकर सोने में, बाजार के चाट–पकौड़ों में व वर–शाम में खर्च करेंगे।

परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि प्रभुजी किसी–किसी पर किरण डालते हैं। बाकी सबके लिए ये ध्यान तेज हीन है। ऐसी बात नहीं है। सभी ध्यान श्री प्रभुजी व गुरूजी के दिव्य तेजोमयी हैं। परन्तु उसे सहन करने की क्षमता हममें नहीं है। फिर भी जाते रहना चाहिये क्योंकि कुछ न कुछ संस्कार तो कटते ही हैं और मन में सात्विकता भी सहज ही बढ़ती है। यदि घर आकर हम वहाँ के नियमों की तरह कार्य करें तो आभास होगा कि उनके तेज की किरणें हमारे साथ घर में आयी हैं। परन्तु आश्चर्य है कि जिस भूमि पर हमारा दिन–रात निवास रहता है हमने उसके परमाणु इस प्रकार के कर रखे हैं कि आश्रम का उत्साह दो दिन में खत्म।

अतः अपनी निवासित भूमि को जप–तप–स्वाध्याय, ध्यान से प्रतिदिन सींचते रहना चाहिये।

वहाँ रहते हुए खान–पान सुधारें, संयमी बनें। जो व्यक्ति अधिक तामसी व राजसी प्रवृत्ति के हैं। उन्हें अपने घर पर निमन्त्रण नहीं देना चाहिये। सात्विक व्यक्तियों के साथ उठे–बैठे व हर किसी के घर खाने–पीने की आदत छोड़ें। शुरू–शुरू में सब जिद करेंगे। धीरे–धीरे सब समझने लगेंगे। सुगन्धित भोजन घर में बने, दुर्गन्ध फैलाने वाला आहार त्यागें। सहन शक्ति को बढ़ायें। घर में क्रोध के अवसर कम आने दें। इस प्रकार के व्यवहार से घर की भूमि सात्विक संस्कारों से परिपूर्ण होगी। अतः घर की भूमि को इस प्रकार सुसंस्कारित व सुरक्षित रखें जिस प्रकार लंका में विभीषण जी अपने घर को सुरक्षित रखते थे। रामायण में स्पष्ट पता चलता है कि जब श्री हनुमान जी पूरी लंका का सर्वेक्षण कर रहे थे तो केवल एक घर श्री विभीषण जी का ही था जो श्री चिन्हों (शुभ लक्षणों) से युक्त था।

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा।।
रामायुध अंकित गृह, शोभा बरनि न जाई।
नव तुलसी का वृन्द तहँ, देखि हरस कपिराई।। **(सुन्दर काण्ड)**

और ऐसी बात नहीं है कि घर की बनावट और उस पर अंकित धनुष–बाण तथा तुलसी के वृक्षों के समूह से ही यह बात निश्चित हुई कि यह किसी धर्मप्रेमी सज्जन भक्त का घर है। विभीषण जी की रहनी, सहनी और कहनी अर्थात् निवास, व्यवहार और भाषा भी सन्तों जैसे थे। राक्षसों के बीच सज्जन का रहना बड़ी बात है न कि साधुओं के बीच साधू बनकर रहना। विभीषण जी स्वयं अपनी हालत बयान करते हैं–

सुनहू पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि जीभ बिचारी।

जैसे कठोर दाँतों के बीच बेचारी जीभ रहती है, ठीक उसी प्रकार राक्षसों के बीच बेचारे विभीषण जी रहते थे।

अतः हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि हमें श्री लंका जैसी राक्षसी भूमि पर तो नहीं रहना पड़ा तथा राक्षसों जैसे व्यक्तियों के बीच नहीं रहना पड़ता। अतः यदि हम अपने को सधाने का तथा तपाने का प्रयत्न करें तो सफलता अवश्यक मिलेगी ही मिलेगी क्योंकि–

अगर आस्था है, तो बंद द्वार में भी, 'रास्ता' है।

(श्री योगेश छिब्बर 'आनन्द')

और यदि बाहर कुछ, अन्दर कुछ, कीर्तन में मधुर गायन, घर में क्रोध का प्रलाप तो ऐसे मनमाने साधक के लिए कुछ कहना बेकार। अधिकांश जीवन शैली इसी प्रकार की देखने को मिलती है–

मन में राखे और कुछ, वाणी में कुछ और।
कर्म करे कुछ और ही, झूठे तीनों ठौर।।

* * *

भाव-प्रसून

श्रीमती सरिता भारद्वाज, दिल्ली

गुरु बिन को अब पार लगावै।
नैना भए बावरे तुम बिना, दर्शन को ये अति अकुलावै।
हिय में हूक उठति अति भारी, तुम बिन को अब ह्रदय लगावै।
बडे प्रेम से लखि और छिप, चुप को अब ह्रदय प्रेम उमगावै।
है सब नाते स्वार्थ प्रेम के, को कहि मुनिया लला बुलावै।
है जग में क्या तुमसा कोई जो प्यार लुटावै ह्रदय लगावै।
जब–जब जग हमको ठुकरावै, तब–तब गुरुवर निकट बुलावै।
ताप शाप से मुक्त करें और रोग–भोग सब दूर भगावै।
अवगुण, दोष अनेकों मुझमें, कोई न तुम बिन पार लगावै।
भव–सरिता में फँसी ये 'सरिता', दयासिंधु बिन कौन मिलावै।।

मनवा गुरु नाम जप लीजै।
गुरु नाम है सबसे पावन, प्रतिपल प्रतिक्षण लीजै।
गुरु नाम एक दिव्य जड़ी है, निज उठि बटि कै पीजै।
गुरु का वास है निश्छल मन में, जान कपट तजि दीजै।
गुरु का ज्ञान सुधा सम उत्तम, पान निरन्तर कीजै।
गुरु–चरण ही तीरथ काशी, तहाँ वास नित कीजै।
गुरु–दर्शन सब शोक भगावै, पुनि–पुनि प्रतिपल कीजै।
गुरु का ह्रदय भरा करुणा से, सब सुख–दुःख कहि लीजै।
कमल–नयन नित नेह के सागर, नेह सुधा नित पीजै।
'सरिता' के प्रभु हैं करुणामय, सतत दरश मन कीजै।
मनवा गुरु नाम जाप लीजै।।

आरोग्य-साधन

डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र

हिन्दू-धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मनुष्य के सर्वांगीण (शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक) विकास का लक्ष्य रखा गया है। हमारे धर्म-शास्त्रों में नीरोग शरीर तथा स्वास्थ्य-रक्षा द्वारा पूर्ण आयु (सौ वर्ष की दीर्घायु) की प्राप्ति विभिन्न उपायों पर गम्भीर विचार किया गया है।

धर्म का स्वास्थ्य और आरोग्य से गहरा सम्बन्ध है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन (जो पवित्र विचारों, शुभ संकल्पों का आधार है) का निवास होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रमुख साधन मनुष्य-शरीर ही है—

'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।'

रोगरहित शरीर धर्म का आधार है। दुर्बल स्वास्थ्य वालों की इन्द्रियाँ भी अपेक्षाकृत अधिक चंचल देखी जाती हैं; अतः शरीर-शुद्धि पर हमें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

शरीर पूर्ण स्वस्थ, नीरोग और हल्का रहना चाहिये।

इससे चित्त प्रसन्न रहता है, चिन्तन-शक्ति बढ़ती है तथा मन, बुद्धि और प्राण सात्त्विक रहते हैं। नीरोग और स्वस्थ साधक दैवी सम्पत्ति का विशेष अर्जन कर सकता है। विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले अधिकतर रोगी पाये जाते हैं तथा प्रायः आसुरी सम्पत्ति के निवास-स्थान बने रहते हैं। रोगों के कारण मन में भी विकार उत्पन्न होते हैं।

धर्म-प्राप्ति के निमित्त नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए पूर्ण आयु (शतायु) प्राप्त करना मनुष्य मात्र का धर्म है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।

(ईशावास्योपनिषद् २)

'संसार में मनुष्य शुभ (शास्त्रोक्त) कर्म करता हुआ ही (आलसी बनकर नहीं) सौ वर्षों तक नीरोग जीने की इच्छा करे।' उत्तम स्वास्थ्य और आरोग्य के लिये हमें सक्रिय जीवन बिताना चाहिये।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः। अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते।। एतद्वै तत्।।

(कठ० २/२/१

उस नित्य विज्ञान स्वरूप अजन्मा (आत्मा) का (शरीर रूप) पुर ग्यारह दरवाजों वाला है। उस (आत्मा) का ध्यान करने पर मनुष्य शोक नहीं करता और वह (इस शरीर के रहते ही) मुक्त हो जाता है—विदेह हो जाता है। निश्चय ही यही वह ब्रह्म है।

जो साधक इस मनुष्य-शरीर को इस प्रकार ब्रह्मपुर के रूप में देख (स्वास्थ्य के नियमों

का पालन) कर शुद्ध, नीरो., और पवित्र रखता है, क्षुद्र वासनाओं, विषय–विकारों के वशीभूत न होकर शरीर एवं मन की भलीभाँति शुद्ध कर लेता है, वह सब प्रकार के सांसारिक शोक से वियुक्त हो शरीर में निवास करता हुआ ही इसके सब बन्धनों से छूट जाता है--जीवन्मुक्त हो जाता है।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः.......'

(मुण्डक० ३/२/४)

अर्थात् जो मनुष्य बलहीन (उत्साह हीन) होता है, शारीरिक और मानसिक अस्वास्थ्य के कारण वह प्रायः साधन के मार्ग पर भलीभाँति अग्रसर नहीं हो पाता, वह इस आत्मा को–समीप–से–समीप, अपने भीतर विराजमान आत्मा को पाने में निराश हुआ रहता है।

संयम-दीर्घ जीवन की कुंजी

धर्म में सर्वप्रथम संयम पर विशेष बल दिया गया है। इसलिये हमें चाहिये कि हम अशुभ पदार्थों, अभक्ष्य भोजन एवं दुष्ट विचारों से बचें, इन्द्रियों को वश में रखें, अति से बचें, खान–पान, आहार–विहार के आधिक्य से बचें और आत्म संयम द्वारा स्वास्थ्य एवं आरोग्य के मार्ग पर बढ़ते रहें।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।। (यजुर्वेद ३६/२४)

हम सौ वर्षों तक देखते रहें, सौ वर्षों तक जीते रहें, सौ वर्षों तक सुनते रहें, सौ वर्षों तक हममें बोलने की शक्ति रहे तथा सौ वर्षों तक हम कभी दीन–दशा को न प्राप्त हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षों से अधिक कालतक भी हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें एवं कभी दीन न हों।

संयम के साथ ब्रह्मचर्य–पालन पर विशेष जोर दिया गया है। ब्रह्मचर्य द्वारा शारीरिक शक्तियों, यौवन और आरोग्य की सुरक्षा होती है। कहा गया है–

ब्रह्मचारी मिताहारः सर्वभूतहिते रतः
गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

(संवर्तस्मृति २१८)

'ब्रह्मचर्य–पालन, अल्प भोजन, सब प्राणियों के हित में तत्पर तथा गायत्री का एक लाख जप करने वाला धर्म का प्रेमी सभी पापों से मुक्त हो जाता है।'

वीर्य नष्ट होने से आरोग्य, तेजस्विता, बल और साहस आदि का ह्रास होने लगता है। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिये धर्म–शास्त्रों ने आठ प्रकार के मैथुन से अत्यन्त सावधान रहने का संकेत किया है–

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।।

(दक्षस्मृति ७/१३–३२)

मनीषी पुरुषों ने मैथुन के आठ अंग बतलाये हैं—स्त्री का स्मरण करना, स्त्री के अंग-प्रत्यंगों एवं कार्यकलापों का वर्णन करना, स्त्रियों के साथ हास–परिहासयुक्त क्रीड़ा करना, लुक–छिपकर अथवा प्रत्यक्ष रूप में स्त्रियों की ओर देखना, एकान्त में स्त्रियों के साथ बातचीत करना, स्त्रियों के प्रति आसक्ति रखते हुए काम क्रीड़ा की इच्छा करना, अप्राप्य स्त्री को पाने के लिये प्रयत्न करना और प्रत्यक्ष समागम में रत रहना।

अच्छे स्वास्थ्य, आरोग्य, दीर्घ जीवन, धर्म आदि को प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों को इन आठों प्रकार के मैथुनों से बचना चाहिये। ये स्वास्थ्य के लिये विष–तुल्य हैं। इनमें से एक भी स्वास्थ्य और सौन्दर्य को चौपट करने में पर्याप्त है। मन को वासना से दूर रखकर वीर्य की रक्षा करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। अतः रोगरहित दीर्घ जीवन तथा आध्यात्मिक अभ्युदय के लिये हमें ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

व्यायाम का महत्त्व और आवश्यकता

धर्म–शास्त्रों में व्यायाम को अत्यावश्यक बतलाया गया है। साधु–संन्यासी, ऋषि, साधक ही नहीं, प्रत्युत मनुष्य मात्र के लिये व्यायाम करना आवश्यक है। हमें नियमित व्यायाम द्वारा रक्त शोषण करने वाले सभी रोगों के कीटाणुओं और बुरे विचारों को मन से सदा दूर रखने तथा ब्रह्मचर्य–पालन के द्वारा अपनी शारीरिक शक्तियों को दीर्घकाल तक अपने शरीर में बनाये रखने की भरपूर चेष्टा करनी चाहिये।

हिन्दू–धर्म में योग का अत्यधिक महत्त्व है। योगासन योगविद्या के अंग हैं। योगासन सभी व्यायाम–पद्धतियों में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अन्य व्यायामों से शरीर के कुछ ही भाग विकसित होते हैं, किंतु विभिन्न योगासन करने पर शरीर का सर्वांगपूर्ण व्यायाम हो जाता है। नियमित रूप से योगासन करने से मानव–शरीर पुष्ट और सुन्दर बनता है, शक्ति और स्फूर्ति आती है तथा शरीर में क्रियाशीलता बनी रहती है। योगासन मनुष्य के बाहरी और आन्तरिक स्वास्थ्य की वृद्धि और सुरक्षा में हेतु है। इनसे चंचल मनोवृत्तियों का निरोध होता है।

धर्म–शास्त्रों ने टहलना सबके लिये, विशेषतः वृद्धों के लिये उपयोगी व्यायाम बतलाया है। याद रहे, प्रातःकालीन प्राणवायु सूर्योदय के पूर्व तक निर्दोष बनी रहती है, अतः धर्म में रुचि रखने वालों को प्रातःकाल जल्दी उठकर, स्नान करके टहलने जाना चाहिये—प्राणवायु का सेवन करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य और आरोग्य स्थिर रहता है।

धर्म और आहार

जैसा मन में विचार उत्पन्न होता है, वैसा ही वाणी से बोला जाता है और वैसा ही काम भी होता है। हमारे मन पर ही सब कुछ निर्भर है और यह मन आहार–शुद्धि पर टिका हुआ है—

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।'

'आहारशुद्धि से सत्त्व की शुद्धि होती है, सत्त्व–शुद्धि से निश्चल स्मृति की प्राप्ति होती है और निश्चल स्मृति से सब बन्धनों से मुक्ति मिलती है।' अतः मनुष्य को सोच–बूझकर अपना आहार निश्चित करना चाहिये।

धर्माचरण करने वाले पुरुष को ऐसा सात्विक आहार करना चाहिये, जो मधुर, रसयुक्त और स्वादिष्ट अन्न प्रेमशुद्धता पूर्वक बनाया गया हो। तीखे, कसैले, बासी भोजन और मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों का प्रयोग घृणित है।

हमारा आहार ऐसा हो जिससे हमारी बुद्धि, अवस्था और बल में निरन्तर वृद्धि होती रहे। दूध, फल, मेवे, कन्दमूल (गाजर–मूली) साग, भाजी, गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, मक्का, नारियल, बादाम, किशमिश, अखरोट, नाशपाती, केला, नारंगी, अंगूर एवं दही आदि शुद्ध आहार हैं। इनसे शरीर का पोषण होता है।

यदि अन्न को खिलाने वाला तामसी प्रवृत्तियों का मनुष्य है तो उसका भी दूषित प्रभाव खाने वाले पर पड़ता है।

गीता में आहार के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है– आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय–ऐसे आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं। जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह तामस पुरुष को प्रिय होता है।

धर्म और उपवास

अधिक भोजन करने से स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन का नाश होता है, अतः हमारे धर्मग्रन्थों में आन्तरिक शुद्धि की दृष्टि से प्रति पन्द्रह दिनों में उपवास का विधान किया गया है। उपवास से केवल शरीर ही शुद्ध नहीं होता, मनोवृत्तियाँ भी निर्मल बनती हैं।

विषय–वासना की निवृत्ति के लिये उपवास महत्वपूर्ण साधन है, अतः एकादशी को उपवास का विधान किया गया है। स्वास्थ्य की दृष्टि से उपवास से ज्वर, जुकाम, हैजा, अपच, कुष्ठ, स्वप्नदोष, खाँसी, दमा, सूजन आदि शरीर की अनेक विकृतियाँ दूर हो जाती हैं। 'कार्तिक महात्म्य' के अनुसार उपवास से बढ़कर कोई तपस्या नहीं है।

सूर्योपासना

सूर्योपासना हमारे स्वास्थ्य के लिये एक अत्यन्त लाभदायक कृत्य है। सूर्य से हमें प्रसन्नता, स्वास्थ्य, सौन्दर्य और यौवन आदि की प्राप्ति होती है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' सूर्य स्थावर जंगम पदार्थों का आत्मा है। अतः सूर्य से हम प्रार्थना करते हैं–'जीवेम शरदः शतम्' 'हम सौ वर्षों तक जीवित रहें।' सूर्य की रश्मियाँ शक्ति और जीवन प्रदान करने वाली हैं। सूर्य–स्नान करने से अनेक रोगों–टायफाइड, यक्ष्मा आदि के कीटाणु नष्ट होते हैं।

इस प्रकार मनुष्य के शरीर और अन्तःकरण को परिष्कृत कर आत्म–तत्व–प्राप्ति के उद्देश्य से हिन्दू–धर्म में स्वास्थ्य–सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्वों का विधान उपलब्ध होता है। आत्मचेतना को विकसित करने के लिये यथासम्भव उपर्युक्त स्वास्थ्य–सम्बन्धी नियमों का पालन करना चाहिये। इनसे बाह्य और आभ्यन्तर शौच की प्राप्ति होती है। ❋ ❋ ❋

शब्दयोग और वाग्योग

प्राचीन आगमशास्त्रों में वाग्योग अथवा शब्दयोग के नाम से जिस योगप्रणाली का उल्लेख पाया जाता है, उसका तात्पर्य और रहस्य आजकल बहुत-से लोग प्रायः भूल गये हैं। शैवागम के अन्तर्गत व्याकरण-आगम में भी इस योगसाधन का परिचय मिलता है। जिन्होंने भर्तृ हरि के वाक्यपदीय और उसकी [illegible] प्राचीन व्याख्या का अनुशीलन किया होगा, उन्हें वाग्योग की बात अवश्य मालूम होगी। व्याकृत शब्द को वैखरी अवस्था में मध्यमा में उत्तीर्ण होकर पश्यन्ती स्वरूप में प्रवेश कर जाना ही इस योगसाधन का प्रधान उद्देश्य है। पश्यन्ती अवस्था से परा-अवस्था में-अव्याकृत पद [illegible] गति और स्थिति प्राप्ति स्वाभाविक नियम से आप ही हो जाती है। वह किसी भी साधना का आन्तरिक लक्ष्य नहीं है। वैखरी या स्थूल इन्द्रियग्राह्य शब्द विशेष मिश्र अवस्था में होने के कारण उसमें असंख्य आगन्तुक मल विद्यमान रहते हैं। गुरुपदिष्ट प्रणाली से साधन कर चुकने पर चाहे जिस शब्द को उसकी स्थूल अवस्था से मुक्त करके विशुद्ध बनाया जा सकता है। इस शोधन-क्रिया का नाम ही शब्द-संस्कार है। जब शब्द सम्यक् प्रकार से शुद्ध या संस्कृत हो जाता है तब वह दिव्यवाणी या संस्कृतवाणी अथवा शुद्धिकारिणी ब्राह्मी शक्ति के रूप में परिणत हो जाता है। केवल एक शब्द को भी इस प्रणाली से शुद्ध कर लेने पर जीव सदा के लिए कृतकृत्य हो सकता है—

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति।

जो एक शब्द का भी संस्कार करने में समर्थ हुए हैं, उन्हें किसी तरह का अभाव नहीं रह सकता। वह एक ही शोधित शब्द शक्ति के स्वरूप में प्रकाशित होकर उनके समीप कामधेनु के आकार में आविर्भूत होकर उनके समीप कामधेनु के आकार में आविर्भूत हो जाता है। शब्द के मर्म को जानने वाले वसिष्ठ आदि ऋषि इसी उपाय से अलौकिक शक्ति के अधिकारी [illegible] थे। आवर्तन अथवा जपयज्ञ इत्यादि के अभ्यास से [illegible] शब्द से आगन्तुक समस्त मल दूर हो जाते हैं। तब इडापिंगला का अपेक्षाकृत स्तम्भन हो जाता है और सुषुम्ना-पथ कुछ परिमाण में उन्मुक्त हो जाता है और सुषुम्ना पथ कुछ परिमाण में उन्मुक्त हो जाता है। फिर प्राणशक्ति की सहायता से वह शोधित शब्द शक्ति सुषुम्ना रूप ब्रह्मपथ का आश्रय लेकर क्रमशः ऊर्ध्वगामिनी होती है। यही शब्द की सूक्ष्म या मध्यमा नामक अवस्था है। इसी अवस्था में अनाहत नाद प्रकट होता है और स्थूल शब्द इस विराट् प्रवाह में निमग्न होकर उससे भर जाता है तथा चेतना भाव धारण कर लेता है। यही मन्त्र-चैतन्य का उन्मेष भाव है। साधक इस अवस्था में पहुँच जाने पर जीवमात्र की चित्तवृत्ति को अपरोक्ष भाव से शब्द रूप में जान लेता है। देश अथवा काल का व्यवधान शब्द की इस स्फूर्ति को नहीं रोक सकता। इसके बाद प्रातःकालीन बालसूर्य के समान शब्द ब्रह्मरूपी आदित्य साधक के आत्म अथवा इष्टदेवता के रूप में प्रकाशित होकर अन्तराकाश का अन्धकार दूर कर देते हैं। आगमशास्त्र में इसी को पश्यन्ती वाक् कहा जाता है। प्राचीन वैदिक साहित्य में ऋषित्व-प्राप्ति अथवा मन्त्रसाक्षात्कार के नाम से जिसका उल्लेख किया गया है, यह वही अवस्था है। आत्मदर्शन, इष्टदेव दर्शन, ज्ञान-चक्षु का उन्मीलन, शिवनेत्र का विकास, षोडशी कला का उन्मेष अथवा सांख्यवर्णित द्रष्टा पुरुष का स्वरूपावस्थिति रूप कैवल्य—ये सब इसी पश्यन्ती भूमि की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। पश्यन्ती की अपेक्षा परा भूमि पथ अत्यन्त गुप्त है। अतएव यहाँ पर उसकी आलोचना करना अप्रासंगिक और अनधिकार चर्चा होगी।

सिद्धयोग

...ग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सचाई, [illegible], आगरा (उ.प्र.)

श्री/सुश्री

562 माणिक चंद शर्मा
बी 65, बालाजी पुरम, अलबतिया रोड
शाहगंज, आगरा

उपधा हि परो हेतुर्दुःखंदुःखाश्रयप्रदः। त्यागः सर्वोपधानां च सर्वदुःखव्यपोहकः।।

कोषकारो यथा ह्यंशूनुपादत्ते बधप्रदान्। उपादत्ते तथार्थेभ्यस्तृष्णामज्ञः सदाऽऽतुर।।

उपधा (तृष्णा) ही समस्त रोगों या दुःखों का कारण है। अतः सब प्रकार की उपधाओं का त्याग करना ही सम्पूर्ण दुःखों का नाश करना है। जिस प्रकार से रेशम ...ड़ा अपनी मृत्यु के कारणस्वरूप रेशम के जाल का स्वयं निर्माण करता है और दुःख को प्राप्त करता है, उसी तरह मूर्ख लोग स्वयं तृष्णा करते हैं और दुःख ... हैं।

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनय गजानन शर्मा द्वारा [illegible] प्रिंटिंग प्रेस, [illegible], ताजगंज, आगरा में / राष्ट्रीय [illegible] एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सचाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक- आचार्य ब्र.(डॉ.) [illegible] शर्मा